हिंदी प्रभाकर की सर्वोत्तम सहायक पुस्तकें

काव्य-प्रदीप की प्रश्नोत्तरी

[श्री दुर्गाप्रसाद गुप्त साहित्य-विशारद]

इसमें काव्य-प्रदीप का संक्षेप प्रश्न और उत्तर के रूप में दिया गया है। मूल्य ।=)

अलंकार का चार्ट

[श्री देशबंधु शास्त्री तथा प्रो० टेकचन्द शास्त्री]

इसमें प्रभाकर परीक्षा के सब अलंकार उदाहरण सहित दिये गये हैं। ठीक परीक्षा पर काम आने वाली वस्तु है। मूल्य =)

कामायनी की कुंजी

(श्री सत्यपाल विद्यालंकार)

इसमें 'कामायनी' के सब पद्यों की सरल टीका, रहस्यवादी पदों के विस्तृत संकेत और भावार्थ, ग्रंथ की आधारभूत कहानी, प्रसाद जी की जीवनी और उनकी कविता का विस्तृत आलोचनात्मक परिचय तथा अन्य अनेक ज्ञातव्य बातें दी गई हैं। ऐसी विस्तृत, शुद्ध और आलोचनात्मक कुंजी अब तक तय्यार नहीं हुई। पुस्तक लेते समय श्री सत्यपाल जी का नाम देख लें। मू० २।)

दोहा मानसरोवर की कुंजी

(टीकाकार—श्री हरिश्चन्द्र शास्त्री प्रभाकर तथा श्री शीलभद्र साहित्यरत्न)

इस पुस्तक में विद्वान टीकाकारों ने मानसरोवर के सब दोहों की सरल टीका कठिन शब्दों के अर्थ सहित की है। अर्थों की शुद्धता के विचार से ऐसी कुंजी अब तक तैयार नहीं हुई।

विक्रमादित्य

लेखक

उदय शंकर भट्ट

प्रकाशक

हिन्दी भवन

अनारकली, लाहौर

सजिल्द १) द्वितीय संस्करण मूल्य ।।=)

पात्र-सूची

पुरुष-पात्र

विक्रमादित्य	... आहवमल्लदेव का पुत्र
सोमेश्वर	.... विक्रमादित्य का बड़ा भाई
जयसिंह	... विक्रमादित्य का छोटा भाई, बनवास का राजा
चेङ्गी	... काञ्ची का राजा, सोमेश्वर का सहायक
साम्ब	... करहाट का प्रधान मंत्री
चन्द्रकेतु	... कूटनीतिज्ञ, विक्रमादित्य का पदच्युत सेनापति
सुवेग	... विक्रमादित्य का सेनापति
मुग्धतुंग	... विक्रमादित्य का मंत्री
दैवज्ञ	... विक्रमादित्य का हितू
चंडांशुक (नृसिंह)	... सोमेश्वर का मंत्री

करहाट का सेनापति, मंत्री, वाहुक, वितुण्ड, प्रजागण

स्त्री-पात्र

चन्द्रलेखा (मणिद्वीप)... करहाट देश की कन्या, विक्रमादित्य की पत्नी
अनंगमुद्रा (सिन्धुनाग) चन्द्रलेखा की सखी

स्थान-सूची

करहाट	... चोल राज्य की राजधानी
कल्याण	... सोमेश्वर की राजधानी
पाण्डय देश	... काञ्ची का प्रान्त

Printed and published by D. C. Narang
at the H. B. Press, Lahore.

कथावस्तु

ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में रामेश्वर के उत्तर में कल्याण नाम का एक राज्य था। वहाँ चालुक्य वंश के आहवमल्लदेव नाम के एक राजा थे। आहवमल्लदेव के तीन पुत्र हुए, सोमेश्वर, विक्रमादित्य और जयसिंह। बाल्यावस्था से ही विक्रमादित्य बड़े प्रतापी थे। पिता उन्हें बहुत प्यार करते थे। कहा जाता है विक्रमादित्य शिव के वरदान से उत्पन्न हुए थे। बाल्यावस्था से ही विक्रमादित्य को सिंह के शिकार आदि बल-विक्रम के कामों में रुचि थी। थोड़े ही दिनों में ये धनुर्विद्या, मल्लविद्या आदि में प्रवीण हो गये। इसके विपरीत सोमेश्वर जन्म से ही कुटिल एवं छद्मवेशी था। वह विकमादित्य के बल पराक्रम से जलता था। एक बार पिता ने दरबार में सोमेश्वर की निन्दा करते हुए अपने योग्य मध्यम पुत्र विक्रमादित्य को राज्य-सिंहासन देने का विचार प्रकट किया। उस समय विक्रमादित्य ने अपनी प्रशंसा से विरक्ति दिखाते हुए राज्य भार सँभालने में असमर्थता प्रकट की तथा न्याय का पक्ष लेते हुए बड़े भाई सोमेश्वर के राज्याधिकार का स्पष्ट शब्दों में समर्थन किया। पिता इस पर और भी प्रसन्न हुए। सुयोग पाकर पिता की आज्ञा से विक्रमादित्य ने दिग्विजय के लिए कूच किया और खेल ही खेल में चोल, पाण्ड्य, कांची, गौड़, कामरूप, सिंहल आदि प्रदेशों में अपने पिता की धाक जमा दी। सब राजा लोग महाराज आहवमल्लदेव के अधीन हो

गये। दिग्विजय से लौटते हुए विक्रमादित्य ने तुंगभद्रा के किनारे पिता आहवमल्लदेव के दिवंगत होने का दुखद समाचार सुना। सुनते ही वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े और शीघ्र ही कल्याण को लौट पड़े। यथा समय पिता के क्रिया-कर्म से निवृत्त होकर विक्रमादित्य बड़े भाई सोमेश्वर की अधीनता में रहने लगे। किन्तु विधाता को यह स्वीकार न था। सोमेश्वर भीतर ही भीतर विक्रमादित्य से द्वेष रखने लगा। षड्यंत्र द्वारा विक्रम के नाश के उपाय सोचे जाने लगे। इसी बीच में चोल देश के पराजित राजा के पुत्र ने किसी प्रकार कल्याण के गृह विद्वेष का समाचार पाकर विक्रमादित्य को चोल में बुला लिया, और अपनी बहन चन्द्रलेखा से विक्रम की विवाह कर दिया।

इधर सोमेश्वर को जब विक्रमादित्य के विवाह का पता लगा तब तो सोमेश्वर और भी जल उठा। उसने कल्याण की प्रजा को विक्रमादित्य के विरुद्ध यथाशक्ति खूब भड़काया। इस काम में विक्रमादित्य के पदच्युत सेनापति चन्द्रकेतु ने अग्नि में घी का काम दिया। उसकी सलाह से सोमेश्वर ने कल्याण में विक्रमादित्य का नाम लेना भी दण्डनीय घोषित कर दिया।

विवाह के बाद विक्रमादित्य कल्याण न जाकर तुंगभद्रा के किनारे ही छावनी डाल कर रहने लगे। इस समय विक्रमादित्य को लड़ाई झगड़ों से कुछ अरुचि हो चली थी उनके विचारों में दार्शनिकता की झलक थी। प्रत्येक कार्य को न्याय और विवेक की कसौटी पर कसना ही उनका काम रह गया था। इसी समय विक्रमादित्य को एक ज्योतिषी द्वारा, जो कि विक्रमादित्य के सेनापति सुवेग

का दूत था, कल्याण राज्य के समाचार मिले, और साथ ही अपने साले, चन्द्रलेखा के भाई पांड्य राज का चेङ्गि द्वारा विनाश और चोल देश के हस्तगत करने के षड्यंत्र का समाचार प्राप्त हुआ। विक्रमादित्य ने चोलराज की रक्षा के लिए प्रस्थान की घोषणा कर दी। उधर सोमेश्वर ने यह समाचार पाकर अपने विश्वस्त कर्मचारी चण्डांशुक को आज्ञा दी कि वह विक्रमादित्य का शरीर-रक्षक बन कर उसके नाश का उपाय सोचे। चण्डांशुक आज्ञानुसार चन्द्रकेतु का सहायक बन कर विक्रमादित्य का शरीर-रक्षक बन गया। विक्रमादित्य के प्रस्थान के समय चन्द्रलेखा और अनंगमुद्रा ने परस्पर परामर्श करके सिंहल के दो राजकुमारों का वेश धारण किया और चेङ्गि के गुप्त रहस्यों का पता लगाने में तत्पर हुईं।

विक्रमादित्य के प्रस्थान का समाचार पाकर चेङ्गि और सोमेश्वर दोनों चोल पर आ चढ़े। विक्रमादित्य का छोटा भाई जयसिंह जिसे स्वयं विक्रमादित्य ने बनवास का राजा बनाया था, मझले भाई की सहायता के लिए आ गया। घमासान युद्ध हुआ। दैव की गति से चन्द्रलेखा और अनंगमुद्रा मार्ग भूल जाने से यथा समय उपस्थित होकर विक्रमादित्य को शत्रु से सतर्क न कर सकीं। युद्धक्षेत्र में चण्डांशुक ने भाई जयसिंह के घायल होने का समाचार सुनाया, जिसे सुनते ही विक्रमादित्य भाई की रक्षा के लिए चल पड़े। षड्यंत्र रचा जा चुका था, शत्रु विक्रम को बहका कर एक बीहड़ स्थान पर ले गये और सब ओर से विक्रमादित्य पर आक्रमण हुआ। विक्रमादित्य घायल हुए, यहाँ यह भी समझ लेना चाहिये कि चोल का सेनापति भी चेङ्गी का गुप्त दूत था। यथा समय सेनापति सुवेग ने समाचार

पाकर विक्रम की रक्षा की और शत्रु के विनाश के बाद चोल सेनापति, चण्डांशुक और चन्द्रकेतु को पकड़ लिया। बाकी लोग भाग गए।

चोल सेनापति और चण्डांशुक बन्दी हुए चन्द्रकेतु संन्यासी के वेश में था, उसने कपट द्वारा अपने को विक्रमादित्य का सहायक एवं विपत्ति की सूचना देने ही आया था, ऐसा सिद्ध किया। विक्रमादित्य ने विश्वास करके उसे छोड़ दिया। चन्द्रकेतु फिर शत्रु पक्ष में आ मिला और एक लकड़हारे की शकल में कालीवन के प्रान्तर में सिंह द्वारा अपने स्त्री पुत्र आदि खाने का समाचार दुखद शब्दों में सुना कर विक्रमादित्य को फिर बुला लाने में सफलप्रयत्न हुआ। शत्रु तो तैयार थे ही विक्रमादित्य को अकेला पाकर उन्होंने फिर आक्रमण किया। चन्द्रलेखा और अनंग इस बार सावधान थीं। फिर भी सोमेश्वर ने विक्रमादित्य को तीर से घायल कर दिया। इस पर चन्द्रलेखा ने सोमेश्वर को बाण मार कर धराशायी कर दिया। सोमेश्वर की आवाज़ पहिचान कर और उसे घायल समझ भ्रातृ-भक्त विक्रमादित्य ने अपने भाई की घातक चन्द्रलेखा को अज्ञान में मार दिया। इस पर चेङ्गि ने अनंगमुद्रा और अनंगमुद्रा ने चेङ्गि और चन्द्रकेतु को मार दिया। उस युद्ध में केवल विक्रमादित्य ही जीवित रहे। विक्रम ने चोल राज्य मन्त्री साम्ब को दिया और आप कल्याण जाकर राज्य करने लगे।

इस कथा का मूल आधार बिल्हण का 'विक्रमांकदेव चरित्र' है। बिल्हण ने अठारह सर्गों में विक्रमादित्य के प्रताप का सविस्तार वर्णन किया है।

लेखक—

विक्रमादित्य

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—कल्याण का राजपथ

(एक दैवज्ञ और दो नागरिकों का प्रवेश)

दैवज्ञ—गाता है—

श्रवणयोग से श्रीहत विधु हो दक्षिण आशाभाग।
पूर्ण चंद्रमंडल में विक्रम पूरेगा उपराग॥
होगा यह खग्रास सुविक्रम (बात काटकर)

पहला नागरिक—अरे महाराज! क्या फाँसी खाया चाहते हो?

दूसरा नागरिक—क्या रोटी की भूख में फाँसी खाने की इच्छा है?

पहला नागरिक—नहीं मरना चाहता है मरना!

दूसरा नागरिक—नहीं, मौत का भोजन बना चाहता है!

दैवज्ञ—(घबराकर) क्यों भाई मैंने क्या किया है? कुछ कहो भी कि आपस में ही थुक्का-फजीहत शुरू कर दी।

पहला ना०—और ऊपर से कहता है मैंने क्या किया, मैंने क्या किया, भला और क्या करता, क्या तुम्हें नहीं मालूम कि

कल्याण में विक्रम का नाम न लेने की घोषणा कर दी है महाराज ने ! समझे !

दूसरा ना०—विक्रम का ख्याल तक करना मना है !

पहला ना०—सोचना मना है समझे !

दैवज्ञ—कारण ?

पहला ना०—(हँसकर) ऊपर से कहता है कारण ! अहाहा !

दूसरा ना०—पकड़ कर ले चलो न !

पहला ना०—बाँधकर ले चलो। जब फाँसी लगेगी तब सब कारण और कार्य निकल जायगा।

दूसरा ना०—जब लोहे का मुकुट पहनेगा तब कारण का ज्ञान होगा।

पहला ना०—जब आकाश और पाताल के बीच में लटकेगा तब कारण पता लगेगा।

दूसरा ना०—जब जीभ बाहर निकलेगी।

पहला ना०—जब नीलाम की बोली का एक, दो, तीन करते हुए हिक्, हिक्, हिक् करते हुए हिचकियाँ लेंगे।

दूसरा—जब ऊपर का ऊपर और नीचे का हिसाब किताब नीचे रह जायगा तब इन्हें आटे-दाल का भाव मालूम होगा।

पहला ना०—जब राजाओं के समान स्वर्ग जाने की इच्छा से उस लकड़ी के पाद-पीठ पर चढ़ेंगे तब आप ही सब टिप जायगा।

दैवज्ञ—अरे भाई, क्यों बातों का अटम्बार बाँध रहे हो कुछ कहोगे भी या यों ही।

दूसरा ना०—बातों का अटम्बार जैसे कोई खाटों का अटम्बार हो।

पहला ना०—और जैसे आदमियों का अटम्बार।

दूसरा ना०—चल मूर्ख, कहीं आदमियों का अटम्बार भी होता है।

पहला ना०—क्यों नहीं होता, अटम्बार तो सब चीज़ का होता है। आदमियों के समूह को उनका अटम्बार कहो।

दूसरा ना०—अटम्बार जड़ चीज़ों का होता है चेतन का नहीं!

दैवज्ञ—भला यह तो बताओ यह घोषणा कब हुई?

पहला ना०—आज ही तो।

दूसरा ना०—सबेरे ही तो।

पहला ना०—नहीं जी दिन चढ़े।

दूसरा ना०—नहीं जी दिन बढ़े।

पहला ना०—दिन कहीं बढ़ता है मूर्ख!

दूसरा ना०—दिन कहीं चढ़ता है धूर्त, यदि दिन चढ़ता है तो बता किस पर चढ़ा?

पहला ना०—अरे यह मुहाविरा है, समझे!

दैवज्ञ—पर महाराज ने ऐसी घोषणा क्यों की?

पहला ना०—क्यों की! हम क्या जानें क्यों की? क्या राजा लोगों के काम हम लोगों के जानने के होते हैं?

दूसरा ना०—क्या हमने ठेका लिया है जो राजाओं की बातें जानते रहें?

पहला ना०—क्या हमारा यही काम है और कुछ नहीं?

दूसरा ना०—और क्या हमारे घर वाले मर गये जो उनकी चिंता न करके ऐसी बातें जानने के पीछे पड़े रहें ?

पहला ना०—और क्या तुम्हारी तरह (दैवज्ञ की ओर इशारा करके) हम खाली हैं; जो छोटी-छोटी बातें जानें ?

दैवज्ञ—क्या महाराज सोमेश्वर विक्रम अथवा विक्रमादित्य शब्द से इतने क्रुद्ध हैं जो इस शब्द का उच्चारण भी दंडनीय समझा गया ?

पहला—फिर वही—अरे तुम पागल तो नहीं हो ?

दूसरा—हाँ और क्या पागल तो हई, जभी तो कुछ गाफ़र बोलता है।

पहला—भला, यह तुम गाते क्या थे जी ?

दैवज्ञ—कुछ भी तो नहीं।

पहला—अरे, इतना सफेद झूठ। अभी तो गा रहा था।

दूसरा—चल मूर्ख, झूठ कहीं सफेद होता है; अगर झूठ सफेद होता है तो तेरा कपड़ा भी तो सफेद है, क्या यह भी झूठा है ?

पहला—ठहरो जी, बातें करने दो; कुछ जानते भी हो ? इसी तरह बोला जाता है ?

दूसरा—हाँ ऐसे ही (बात काट कर)

दैवज्ञ—हाँ—तो महाराज इस शब्द से इतने क्रुद्ध हैं जो इस का प्रयोग भी निषिद्ध कर दिया। ठीक है—

होगा यह खग्रास सुविक्रम (विक्रम शब्द को ऊँचे से न बोलकर)
दूरस्थित निज रश्मिजाल से।
आच्छादित कर लेगा विधु को,
वक्र वक्त्र कर क्रोध काल से॥

पहला—यह फिर तुमने क्या गाया महाराज ?

दूसरा—क्या यह साँप उतारने का मंत्र है ?

दैवज्ञ—यह सर्प उतारने का नहीं, सर्प को मारने का मंत्र है।

पहला—क्या हमें भी यह मंत्र सिखा दोगे ?

दैवज्ञ—नहीं, यह महाराज के विष उतारने का मंत्र है। बबूल के चुभे हुए काँटे को वही काँटा निकालता है—"विषस्य विषमौषधम्।"

दोनों नागरिक—चलो चलो, यह कोई सँपेरा जान पड़ता है, महाराज वहाराज नहीं है। (दोनों जाते हैं)

दैवज्ञ—इतना घमण्ड, इतना दर्प, विक्रम का नाम भी कोई न ले। आः, चोल, पांड्य, कांची, गौड़, कामरूप, सिंहल को विजय करने वाले स्वर्गीय महाराज आहव मल्लदेव के द्वितीय पुत्र अद्वितीय धनुर्धारी, अद्भुत पराक्रमी, प्रतापी विक्रमादित्य का इतना अपमान ? शिव ! शिव ! इस कल्याण का नाश अब तो (कुछ सोचकर) अवश्यंभावी है। ग्रह भी ऐसे हैं। चींटी के पंख उगे हैं। विश्वास के सुदृढ़ मंच के पाये दर्प की दीमक से खाये जा रहे हैं। गिरा और अब गिरा। अपने उच्च से दूरस्थित ग्रह शिथिल रश्मियों से जब उलटी ओर को खिंचता है तब उसकी वक्रगति होती है।

श्रवण योग से श्रोहत विधु हो—

(पढ़ता हुआ जाता है)

दूसरा दृश्य

(क्रीडासर के बंगले में बैठे हुए महाराज सोमेश्वर)

सोमेश्वर—हुआ, बहुत हुआ, कद्रू और विनता की शर्त पर सूर्य के घोड़ों से चिपट कर काला रंग दिखलाने वाले सर्पों की माता की जिस प्रकार क्षणिक विजय हुई, और विनतापुत्र गरुड़ ने जिस तरह माता का भरपूर बदला लिया, इसी तरह जब तक मैं इस दुष्ट भाई से भरपूर बदला न लूँगा तब तक मुझे चैन न पड़ेगा। कोयला जिस तरह आग में पड़कर अपने को आग ही समझ बैठता है, और पानी पड़ने पर जैसे वह काला प्रतीत होता है, ठीक इसी प्रकार थोड़े से देशों पर विजय प्राप्त कर लेने वाले इस भाई को—छीः क्या नाम ले लिया—नीचा न दिखाया तब तक इस जीवन में शांति नहीं ! चोल वंश की करहाट राजकुमारी से इसने विवाह भी कर लिया ! इसीलिये मैंने पड़ोसी राजा चेङ्गी को भड़काकर चोल के राजा को मरवाने का प्रयत्न किया। मेरे अनुरोध और अपने स्वार्थ-साधन में तत्पर चेङ्गी को सफलता भी खूब मिली। इधर करहाट की प्रजा में विद्रोह भी कराया। अब राजारहित चोल राज्य में चेङ्गी का शासन होगा। उसकी सहायता के लिये आने वाले विक्रम को मैं और चेङ्गी छल-छिद्र द्वारा युद्ध में जीत कर उसका मान भंजन करेंगे। अब आवश्यकता इस बात की है कि चंद्रकेतु को —जो पहले विक्रम का सेनापति था और अब पदच्युत कर दिया गया है, तथा जिसके मन में विक्रम के प्रति भीषण प्रतिहिंसा जाग उठी है—आधे राज्य का लोभ देकर विक्रम की सेना का भेद लेने के लिये और भी भड़काया जाय। मैंने अपने नवीन मंत्री

चंडांशुक को विक्रम की सेना में भेजने का निश्चय किया है। युद्ध से कूटनीति ही अधिक विश्वसनीय है। इधर चेङ्गी से युद्ध होगा और उधर हमारी कूटनीतियाँ चलेंगी। अपने इच्छापथ में आये हुए दृढ़ करील को मैं छिन्न-भिन्न करके ही आराम करूँगा। मैं चाहता हूँ चंद्रकेतु संन्यासी का वेश धारण करके उसकी सहायता करे। इस तरह हमारी कूटनीति सफल होगी। संसार में कूटनीति ही सब से बड़ी नीति है। जहाँ कोई अस्त्र काम नहीं देता, जहाँ बल-विक्रम की पहुँच नहीं, जहाँ साम, दाम, दण्ड नीतियों की समाप्ति है; वहाँ भेद और कूटनीति ही फल देती है। यह विश्वास के आसन पर बैठकर, छल की पोशाक पहन कर, प्रेम और दिखावे का मुकुट पहने हुए बलियों पर शासन करती है! जहाँ मान व विवेक की पहुँच नहीं उन दुर्गम शिखरों पर इसका राज्य है।

(गाता है)

अनोखा भेद-नीति-विस्तार
अस्त्र का व्यर्थ जहाँ व्यापार,

मानव हृदयों में जगता है जब तृष्णा का दीप,
उसी नीति की पूजा करके बनता रंक महीप।

सफलता का सुंदर आकार,
निर्बलों का साधन प्रतिकार,

युद्ध शौर्य से जब होता है अरि-दल अति उद्दाम,
इसी भाँति के सैन्य शस्त्र से बनता है तब काम।

विश्व का यह अमोघ व्यापार,
मुग्ध होता लख सब संसार।

(चन्द्रकेतु का प्रवेश)

चन्द्रकेतु—महाराज की जय हो।

सोमेश्वर—आओ, चंद्रकेतु ठीक समय पर आये! तुम्हें तो मालूम ही है—हम दोनों का उद्देश्य एक ही है और वह है विक्रम-विनाश। बीन बजाकर जिस प्रकार सँपेरा साँपों को पकड़ता है, नाद सुना कर व्याध जिस तरह मृग पर हमला करता है, इसी तरह कूट-नीति के चक्रों से, वंचना के वचनों से हमें विक्रम का नाश करना है। मेरी प्रतिहिंसा की अग्नि में जब तक उसका विजय और यशोऽर्जनरूप अमृत भस्म नहीं हो जाता तब तक हृदय में शांति की रागिणी अपना गायन न सुना सकेगी। प्रति-हिंसा भूखे व्याघ्र की तरह उसको खाना चाहती है। मुझे उस समय से तो और भी क्षोभ और क्रोध है जब से मैंने तुम्हारे जैसे निरपराध की पदच्युति सुनी है।

चंद्रकेतु—पृथ्वीनाथ, आपकी चरण-सेवा में आने का एक-मात्र कारण यही है कि संसाररूपी निरपराध कमलवन का नाश करने वाले प्रमत्त हस्ती के समान उस विक्रम को आप ग्राह बन कर कूटनीति के अथाह सागर में घसीट कर उसका ग्रास करें। धर्म के नाम पर अन्याय तो मुझ से देखा नहीं जाता। कर्तव्य की गोदी में बैठकर आत्म-लिप्सा की कटारी छिपा कर मारने वाले आपके भाई ने बल के द्वारा यशपर्वत के दुर्गम शिखर पर आरोहण करने का अनुचित प्रयास किया है।

सोमेश्वर—मुझे तो जन्म से ही इससे घृणा है। जब वह पिता के सामने अकेला ही सिंह को मार देता था, तब पिता जी उस पर प्रसन्न होकर मेरे सामने ही उसकी प्रशंसा करने लगते थे। देखने में तो वह बड़े प्रेम से मिलता; नम्रता, शालीनता का परिचय देता, परंतु उसका चमकता चेहरा, मदभरे नेत्र, विशाल ललाट, उसके अभिमान का अंकुर प्रकट करते थे। मस्त हाथी के समान चलते हुए उसकी चाल दर्पपूर्ण होती थी। अमृत मिले हुए विष के समान उस धूर्त ने स्वर्गीय महाराज पर ऐसा जादू डाला कि वे उसको हम दोनों भाइयों से श्रेष्ठ समझने लगे। जब महाराज भरी राजसभा में उसकी प्रशंसा करते तब वह नीच दिखावे के लिये गम्भीर मुद्रा से "यह सब श्रीमान् के चरणों की कृपा है" कहकर सभा-स्थल से उठ आने का प्रकार दिखाता। मानों अपनी प्रशंसा से उसे असंतोष है। इस पर मुग्ध हो महाराज उसकी और भी प्रशंसा करते। विनय और दाक्षिण्य की ओट में उसने प्रजा का प्रेम ग्रहण किया।

चन्द्रकेतु—(स्वगत) तुममें कुछ गुण होते तो महाराज और प्रजा के प्रिय भाजन बनते। मैं तो अपनी प्रतिहिंसा पूर्ण करने के लिये भाई को भाई का शत्रु बनाकर आधा राज्य-रूपी कार्य साधन चाहता हूँ। मेरी इच्छाओं में व्याघात करने और सारी सेना के सामने मेरी अप्रतिष्ठा करने के कारण ही मैंने यह अस्त्र ग्रहण किया है। अब तुम्हारा विश्वासपात्र बनकर मैं राज्य की अभिलाषा तृप्त करूँ, इसलिये तुम्हारे जैसे मनुष्यों का सहारा लिया है। अन्यथा गीदड़ सिंह का मुकाबिला कहीं कर सकता

है ! (प्रकट) ! महाराज प्रपंची भाई ने आपका तिरस्कार किया, इसका मुझे अत्यन्त दुःख है। आपके इस अपमान का बदला ही मेरे जीवन का ध्येय है।

सोमेश्वर—(स्वगत) और तुम जैसों को उल्लू बनाकर भाई से बदला लेना मेरे जीवन का ध्येय है। (प्रकट) चंद्रकेतु ! अब समय व्यर्थ न खोकर हमें कार्य में प्रवृत्त होना चाहिये। मैंने निश्चय किया है कि तुम्हारे जैसे विश्वासपात्र को चण्डांशुक की सहायता के लिये नियुक्त किया जाय, और तुम संन्यासी के रूप में उसकी सेना में भरती हो जाने वाले चंड की सहायता करो। (कुछ याद करके) देखो तुम्हारे कहने से ही मैंने राज्य में विक्रम का नाम न लेने की घोषणा कर दी है। ऐसा करने में एक बात यह भी है कि मैं अपनी घृणा का कोई फल अभी तक न देख सका। इसीलिये ऐसा किया है कि लोगों के चित्तों में विक्रम के प्रति घृणा पैदा हो जाय। इस काम के लिये मैंने कुछ गुप्तचर भी छोड़ दिये हैं जो कल्याण में विक्रम की बुराई करके प्रजा का मन उसकी तरफ़ से फेर दें।

चन्द्रकेतु—महाराज, इसका फल एक यह भी होगा कि चेङ्गी इस बात को सुनकर आपका विश्वासपात्र बन जायगा। चोल राज्य में ही तो तुंगभद्रा के किनारे विक्रम है; यदि चोल राज्य पर चेङ्गी का अधिकार होगया तो उसे रहने को स्थान भी न मिलेगा।

सोमेश्वर—ठीक है यह भी एक बात है। अच्छा, अब कार्य साधन होना चाहिये। विलंब की आवश्यकता नहीं। जाओ हम भी पाण्ड्य देश को प्रस्थान करेंगे।　　(चन्द्रकेतु का प्रस्थान)

(सोमेश्वर गाता हुआ जाता है)

विश्व में स्वार्थ-सिद्धि सद्भाव,
भावना पूजे उसे सहाव।
है विलास में ऊँच-नीच का धर्म-भाव अति भूल,
आत्म-कामना में जीवन का पथ है आशा-मूल।
लगा दो इसी अंक पर दाव,
विश्व में स्वार्थ-सिद्धि सद्भाव।
स्वार्थ-तोय से जीवन-तरु होता है प्रत्युत कान्त,
ऐश्वर्य के पाद-पीठ पर सत्वर होता राज्य युगान्त।
रंक होता है सत्वर राव,
विश्व में स्वार्थ-सिद्धि सद्भाव।

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

समय—प्रातःकाल

[महाराज विक्रमादित्य तुंगभद्रा के किनारे टहलते हुए]

विक्रमादित्य—(गाते हुए)

निशा-चषक में उषा-काल की मदलाली उठ जागी।
उन्मादिनि सी दृष्टि-तारिका मुकुलित हो छिप भागी॥
पूर्व दिशा ने जीवन मधु की प्याली पीकर गाया।
मार्तण्ड ने मत्त समीरण द्वारा उसे रिझाया॥
स्वप्नों के सुख छोड़ चले नभ नीलाधर अनुरागे।

किसी विरहिणी के अन्तर में नीलशिखा-कण जागे ॥
मद-विह्वल कपोल की सुरखी सी नभ में है छायी।
सीत्कार सा छोड़ हवायें कलियों से लिपटायी ॥
पलकें खुलीं जगत की तत्क्षण राग विराग समाया।
ऊँच-नीच का भेद-कामना मंदिर में चढ़ आया ॥
कमल पत्र पर तोय कणों ने उठ उठ की अठखेली।
सौंदर्य ने ईर्ष्या-मद पी अपनी पढ़ी पहेली ॥

रात और दिन की चरखी पर ओटी जाने वाली जीवन की कलारूपी रूई क्षण-क्षण घटती जाती है। बाल्यावस्था और यौवन के आशांकुर से हम नाश में सुख का अनुभव करते हैं। मृत्यु को प्रतिक्षण निकटतर तथा निकटतम आते हुए देख आशा के उग्र प्रभाव से प्रभावित होकर विजय और भाग्योदय के विलक्षण स्वप्न देखा करते हैं। जीवन क्या है, गाढान्धकार में क्षणिक प्रकाश। जिसके दोनों ओर उत्पत्ति और नाश के दो किनारे हैं। उत्पत्ति से पूर्व और विनाश के बाद इस आत्मा की क्या परिभाषा है यह कौन जाने ?

जीवन यह जग में झाँकी है, झंकार किसी वीणा की है।
है चमक मेघ में बिजली की, यह फुदकन है किस तितली की ?
उड़ती पतंग सा जीवन है, ऊँची उमंगवाला मन है।
यह डोरी है किसके कर में, जो उड़ा रहा दुनियाँ भर में
यह ठुमके रह-रह आते हैं, सुख दुख बन छिपते जाते हैं।
यह उलझन भी क्या बाँकी है, जीवन क्या जग में झाँकी है ?
साँसों के घर में सोता है, खुद हँसता है ? खुद रोता है।

जग घन की धुँधली छाया सी, आसव की फेनिल छाया सी।
यह किनकी किसी हवा की है, जो मिट्टी में छिप झाँकी है।
यह जोती दीप-शिखा की है, झंकार किसी वीणा की है।
बुलबुले हवा के पानी पर, जो नाच रहे मनमानी कर
हा हन्त, हवा के झोंके से, सब फूट गये भर 'हौके' से
यह भी अजीब सी उलझन है, सब हारे कह ज्ञानी जन है
दो शीशों की प्रतिछाया से, उलझा है ईश्वर माया से
यह जीवन ताका-झाँकी है, है मृत्यु जहाँ नाचाकी है।
जीवन यह जिसकी झाँकी है, झंकार उसी वीणा की है॥

अस्थायी को स्थायी, नश्वर को अनश्वर जानकर ही संसार में क्रियायें की जाती हैं। असद्विवेक की दारुण वह्नि में भस्मीभूत संसार का यह क्या प्रकार है? गाढान्धकार में खद्योत का क्षणिक प्रकाश ही तो इसमें जीवन है। तृष्णा के अन्तस्तल में बैठी हुई इच्छा से इस संसार की उत्पत्ति है। जहाँ प्रत्येक मनुष्य के कन्धे पर पाप-पुण्य के दो इतिहास रखे हैं, स्मृति पत्र है और संस्कार लिखावट है। इसी के अनुसार शकट के दो पहियों के समान हम सुख-दुख के कार्यकलाप रूपी मार्ग को पार करते हैं। परन्तु इस जीवन में सुख की पराकाष्ठारूप दृष्टिकोण के रथ पर बैठे हुए कर्तव्य अकर्तव्य के स्वकल्पित चाबुक लेकर लालसा के घोड़ों को निज बुद्धिजन्य विवेक की लगाम से अनवरत दौड़ाते चले जाते हैं। विजयेच्छा, सफलता तक पहुँचने के लिये हमें किन कर्म-काण्डों की गोद में सोने और विचरने का अवसर मिलता है, यह हम जानकर भी भूल जाते हैं। विश्ववैभव की

भड़कीली पर्वत चोटियों पर चढ़ने के लिये हमें मार्ग की कठिनाइयों को दूर करने के लिये अवसर रूप वृक्ष की छाया में बैठकर बुद्धि चातुर्य का पानी पीते हुए उसी उद्देश्य की ओर अविरत गति से बढ़ना पड़ता है। परन्तु कहाँ, वह स्थान भावना-रूप नेत्रगम्य होने पर भी, कल्पना स्वप्नों के द्वारा आत्मसात् कर लेने पर भी क्या कभी मिल पाता है? मैंने भी तो उच्छृङ्खल राजाओं को आत्माधीन किया—उन्हें कर्तव्य का पाठ पढ़ाया। क्षात्र धर्म के दुरूह एवं प्रियपथ का अवलम्बन किया। ब्राह्मणों और संन्यासियों की वाग्दीक्षा के समान कर्म द्वारा क्षत्रियत्व की दीक्षा दी, परन्तु मैं भूला ही रहा। कर्तव्य सिखाने के उद्देश्य से देश-विजय की कामना में स्वार्थ और निजगौरव का ही अधिक संस्कार था; मैं इसी में भूला रहा। इसी कारण इतना सब कुछ होने पर भी मेरे हृदय में शान्ति सद्भाव का अभाव है। अहो—मृगमरीचिका की तरह, मृगगन्धप्राप्ति की अभिलाषा में मृग की तरह सब देशों में दिग्विजय की थोथी डोंडी पीटी। किन्तु हुआ क्या—वही निरुद्देश्य निर्माण, वही क्रियाहीन क्रिया, वही बिना प्रतिबिम्ब के बिम्ब-रचनाप्रयास। सब कुछ व्यर्थ हुआ। सब जगह धर्म की, कर्तव्य की और विवेक की वेदी पर स्वार्थ और आडम्बर का ताण्डव-नृत्य हो रहा है। हा—हन्त! जिन शस्त्रों के द्वारा इतना रक्तपात हुआ वे पाप के पत्थर पर घिसे गये थे। जिन बाहुओं ने विजय-कामना से उन शस्त्रों को उठाया, उनमें अभिमान का बल था और जिन मनुष्यों ने विजय-नाद सुना और विजय-लिप्सा से युद्ध किया, वे भी पाप की परिभाषा से प्रशंसित थे। हा—चन्द्रकेतु को ही देखो

कितना क्रूर, लम्पट और दुष्ट निकला। फिर मैं कैसे कह सकता हूँ कि उपर्युक्त विचार में असत्य की मोहर है।

(मुग्धतुंग का प्रवेश)

मुग्धतुंग—संसार नौका के सूत्रधार महाराज की जय हो!

विक्रम—मंत्रिन्, सुनाओ चोलदेश के क्या समाचार हैं?

मुग्ध०—विश्व-विजयिनी वैजयन्ती के एकमात्र महिमदंड, महारानी चन्द्रलेखा के नवाभिषिक्त भाई चोलराज का दूत एक संदेश लेकर श्री चरणों के दर्शन के लिये आया है, जैसी आज्ञा हो।

विक्रम—मंत्रिन् देखो, क्या समाचार है।

(दूत का प्रवेश)

दूत—चालुक्य-वंशमणि की जय हो। (संवाद का थैला देता है)

वि०—(थैला खोल कर पढ़ता है)

स्वस्ति श्रीमच्चरण-संक्रम-प्राप्त-विक्रम-विजय-विभूति-परिसेवित पादारविन्द-शोभिताखण्ड-भूमण्डल महाराज विक्रमादित्य की सेवा में प्रशस्ति-पुरःसर निवेदन है कि हमारे राज्य में कांची के गुप्त दूतों ने प्रजा को बहका कर विद्रोह-वह्नि सुलगा दी है। राज्य के चारचक्षुओं से यह भी ज्ञात हुआ है कि प्रजा के विद्रोह से लाभ उठाकर कांचीराज चेङ्गी कुछ अन्य राजाओं की सहायता से चोलराज्य को हस्तगत करना चाहता है। आप के पाणिग्रहण और महाराज की मृत्यु के बाद युवराज चन्द्रकांत को सब प्रजा के परामर्श से राजगद्दी पर बिठाया गया। किन्तु लगातार शत्रुओं ने गुप्त अभिसन्धि तथा कूटनीतियों द्वारा अपनी राज्य-सीमा से बाहर पाण्डव नाम के वन में शिकार खेलते हुए युवराज

को सेनासहित उसी वन में मार डाला। फलतः राज्य-व्यवस्था सब अस्तव्यस्त हो रही है। केवल मंत्रिमण्डल तथा कुछ राज्यभक्त ही अपने हाथ-पैर मारकर राज्य की व्यवस्था को ठीक-ठीक रखने की धुन में हैं। सम्पूर्ण राज्य में विद्रोह हो रहा है। प्रजा भी पड़ोसी यादव-राज की अधीनता स्वीकार करने को तैयार है। फलतः अब श्रीमान् अपने दिवंगत महाराज के वंश तथा राज्य को सुरक्षित रखने में अपने दृढ़ सम्बन्धी होने का परिचय देंगे ऐसी प्रार्थना है इति--

निवेदक—**साम्ब प्रधान मन्त्री**

तथा इतर मंत्रिमण्डल

विक्रम—(पत्र पढ़कर क्षोभ से) इतना काण्ड हो गया और हमें खबर तक नहीं। नीच चेङ्गी पड़ोसी राज्यों की सहायता से चोलराज्य हस्तगत करेगा ? मंत्री जी, युद्ध के लिये कूच करो—अब समय बिताने का अवसर नहीं।

मुग्धतुंग—(हाथ जोड़कर) जो श्रीमान् की आज्ञा। किन्तु महाराज.....

विक्रम—हाँ क्या कहा—

मुग्धतुंग—अपराध क्षमा हो-श्रीमान् के भाई भी—

विक्रम—हाँ-भाई क्या-जयसिंह, नहीं ऐसा नहीं हो सकता ! वह मेरे विचार तथा हमारे सम्बन्धियों के प्रतिकूल नहीं जा सकता।

मुग्धतुंग—नहीं देवाधिदेव जयसिंह महाराज नहीं, श्रीमान् के बड़े भाई। (डरते हुए) महाराज सोमेश्वर भी इस युद्ध में चेङ्गी के साथ होंगे ऐसा मैंने विश्वस्त सूत्र से सुना है।

विक्रम—क्या कहा-महाराज सोमेश्वर ? नहीं मुग्धतुंग ऐसा

नहीं हो सकता। तुम भूलते हो। पिता के समान मेरे ज्येष्ठ भ्राता, कल्याण के अधिराज, महाराज सोमेश्वर इस युद्ध में मेरा साथ न देंगे, ऐसी मुझे स्वप्न में भी आशा नहीं है। हा! नीच राज्य-लिप्सा, भावना और विचाररूढ़ि की उत्कट एक-मात्र अभिलाषा, पाप की प्रभूत सम्पत्ति, तुझे शतशः धिक्कार है। अच्छा, मंत्रिन्, कर्त्तव्य-पालन के लिये हमें उस विद्रोह को दबाना ही होगा। जाओ, सेना तैयार करो और हमारी मोहर का एक और पत्र अपने प्रस्थान की सूचनायुक्त चोल देश के मन्त्री को भेज दो।

(मंत्री और दूत का प्रस्थान)

उत्कट काम-वासना के समान इस राज्य-लिप्सा को धिक्कार है। (व्यग्रता के साथ) अब फिर एक राज्य की रक्षा के लिये पिशाची हत्या से नरमुण्डों का संहार करना होगा। धर्म और कर्तव्य-पालन के लिये पाप-पंक में हाथों को सानना होगा। विश्व की और परमात्मा की प्रतिमूर्ति का नाश करना होगा। धर्म के लिये पापलिप्त होना होगा। यह विश्व का विचित्र प्रकरण है। सौन्दर्य, माधुर्य और सहृदयता की रक्षा में जीवित चित्रों के विनाश द्वारा सौन्दर्य, माधुर्य और सहृदयता की रक्षा करनी होगी। यह सृष्टि का कैसा विधान है। संग्राम, संग्राम, भाग्य में क्या संग्राम के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं? युद्ध पर युद्ध। हत्या के बाद हत्या। संहार के बाद संहार। क्या इस पिशाची तृष्णा का कुछ अन्त है? ओह, जीवन का यह पाशविक रूप हम क्षत्रियों के ही पल्ले क्यों पड़ा? धिक्कार है इस मानव-जीवन को। पशु पक्षी भी एक दूसरे का नाश करते हैं किन्तु वे केवल आहार के लिये? व्यवस्था के लिये नहीं। एक प्राणी दूसरे प्राणी का आहार

बनता है यह स्वाभाविक है किन्तु वे तो पशु हैं। उनमें विवेक नहीं है। और एक हम हैं जो विवेक बुद्धि रखते हुए भी नर-नाश पर उतारू हैं। अच्छा, तो अब कर्तव्य की वह्नि में जलकर कर्तव्य की रक्षा करनी होगी। अधर्म की दारुण विषमयी नदी में स्नान करके धर्म की रक्षा का स्वप्न देखना होगा। हाँ ठीक, पर वह धर्म ही किसने देखा है—नहीं धर्म के सम्बन्ध में विचार करने का अधिकार हमें नहीं है। धर्माधर्म-विवेचन हमारा काम नहीं, हमारा जीवन तो क्षत्रियत्व का पालन करना है। यह इस समय पालन करना ही होगा। इसी में हमारा कल्याण है। यही कर्तव्य-परंपरा है।

(एक तरफ ध्यान देकर कुछ सुनने लगते हैं)

हैं यह क्या, यह किस मनुष्य की आवाज़ है—

"श्रवण योग से श्रीहत विधु हो दक्षिण आशा भाग
पूर्ण चन्द्रमंडल में विक्रम पूरेगा उपराग।"

(निकट जाकर) "श्रवण योग से श्रीहत विधु हो दक्षिण आशा भाग" इसका क्या आशय है—इसके क्या दो अर्थ नहीं हैं ? विधु—चंद्रमा—श्रवण—नक्षत्र योग में श्रीहत होगा ! क्या ग्रहण का योग है—अथवा मेरे भाई सोमेश्वर महाराज लोगों के कान भरने से श्रीहत होकर दक्षिण की दिशा में भाग जायँगे ? विक्रम क्या उपराग पूरेगा ? क्या मैं सोमेश्वर महाराज के लिये ग्रहण-रूप बनकर उन का नाश करूँगा ! किंतु ऐसा हो किस प्रकार सकता है। भाई, पिता के समान भाई के लिये मैं क्यों विपत्ति-रूप बनने लगा ?

(नेपथ्य में कोई गाता है)

"होगा यह खग्रास सुविक्रम, दूरस्थित निज रश्मि-जाल से आच्छादित कर लेगा विधु को वक्र वक्त्र कर क्रोध काल से"

विक्रम—यह हमारे संबंध में ही तो कह रहा है ?

(नेपथ्य में फिर आवाज़ होती है, विक्रम कान लगा कर सुनते हैं)

"इतना दर्प ? इतना घमंड ? विक्रम का नाम भी कोई न ले ?" हैं, यह क्या ? यह तो स्पष्ट ही हमारे संबंध में कह रहा है।

(और पास जाकर)

क्यों भाई, यह क्या है ? तुम किसको संबोधन करके यह सब कह रहे हो ?

दैवज्ञ—महाराज की जय हो। कुछ ऐसे ही !

विक्रम—नहीं, अभी यह तुम क्या कह रहे थे ?

दैवज्ञ—महाराज कुछ न पूछिये ! श्रीमान को विश्वास न होगा। हे भ्रातृभक्त महाराज ! सुनिये कल्याण में राजा सोमेश्वर ने श्रीमान् का नाम-ग्रहण भी दंडनीय समझा है। कोई भी व्यक्ति श्रीमान् का नामोच्चारण करके अपराध स्वरूप फाँसी पर लटकाया जा सकता है।

विक्रम—(सुनकर आश्चर्य से) हैं ! महाराज का मुझ पर इतना कोप ! (आगन्तुक से) क्या तुम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हो ?

दैवज्ञ—यह बात बिलकुल सत्य है। राज्य में आपके विरुद्ध षड्यन्त्र भी हो रहे हैं।

विक्रमादित्य—ठीक है मंत्री मुग्धतुंग की बातें इस समय ठीक ही प्रतीत हो रही हैं। क्या तुमने यह संदेश किसी और से भी कहा है ?

दैवज्ञ—नहीं, मैं अभी उस प्रदेश से आ रहा हूँ। राज्य की व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो रही है। स्वर्गीय महाराज आहवमल्लदेव की सन्तान प्रजा पर अत्याचार कर रही है।

(प्रस्थान)

विक्रम—विवेकहीन स्वातंत्र्य मनुष्य को क्या कुछ नहीं बना देता। मेरा नाम भी कोई न ले, वह दंडनीय समझा जायेगा? इतनी प्रतिस्पर्धा! छोटे भाई को इतना क्रूर दंड! मैं इतना अस्पृश्य, अनुच्चारणीय समझा गया! (खेद से) पर महाराज मैंने तो आपका कुछ भी अपकार नहीं किया!

(आकाश की ओर देखकर) पिता! पूज्य पिता! क्या आप यह स्पष्ट रूप से नहीं देख रहे कि मैंने भाई का कुछ भी अपकार नहीं किया। हा हन्त!

(आत्मग्लानि और दुःख से मूर्छित हो जाते हैं)

[पटाक्षेप]

दूसरा अंक

पहला दृश्य

(महारानी चन्द्रलेखा काम-कुंज में बैठी गा रही है)

सजा कर सुख-स्वप्नों का साज।
भेटूँगी प्रियतम से जीभर बुझा विरह-विष आज।
मद के मधुर झकोरों से धीमे सरूर में भर के।
सौंदर्य की सागरिका में न्हावें सुख प्रियवर के।
वायु विलोडित जल बुदबुद पर नाचूँ उन्हें रिझाऊँ।
मधुर कुंद मकरंद सार से प्रियतम को निहलाऊँ।
उझक झुक झाँके काम-समाज।
सजूँ जब सुख-स्वप्नों का साज।
घूर्णित नयनों में झुक झमके झाँकी वही अनूप।
विभ्रम बरसावें विलास सुख वे हों प्रिय के रूप।
उड़ें श्वास आकाश सुखद प्रिय धारण कर अनुहार।
एक रूप हो जीवन मेरा एक रूप संसार॥
हृदय का सुख का फैले राज।
सजाकर सुख-स्वप्नों का साज।

(वीणा हाथ से रख कर) सखी अनंग, मेरी अभिलाषाओं के समुद्र में प्रिय की देदीप्यमान प्रतिमा किस उमंग, किस प्रवाह से तैर रही है यह मैं तुझे क्या बताऊँ, सखी !

अनंग—आश्वासों के आँचल से उत्पन्न पवन से प्रियतम का प्रस्वेद सुखाने वाली महारानी, अभिलाषा केवल समुद्र की अनुकारिणी ही क्यों, यदि संसार ही अभिलाषामय हो जाय, चराचर ब्रह्माण्ड में केवल, केवल मात्र अभिलाषाएँ ही हों तो क्या प्रियतम अभिलाषा के पुंज न होंगे ?

चन्द्रलेखा—यदि मैं और महाराज अभिलाषामय हो जायँ और संसार में अभिलाषा का ही उजेला हो तो इस अभिलाषा का क्या फल ?

अनंग—एक और अभिलाषा।

चन्द्रलेखा—(मीठा सा चपत उसके गालों पर मारकर) दुर पगली तृप्ति क्यों नहीं कहती ! अरी पगली, अतृप्ति एक नशा है, क्रिया उसका साधन, प्रेम उसका परिणाम है। प्रेम की अंतिम गति ही तो अभिलाषा है। जिस प्रकार अखंड प्रकाश में छाया छिपी है, अनन्त सागर में एक-एक कण की सत्ता है उसी प्रकार जीवन की अनन्त सूक्ष्म गतियों में अभिलाषा है। मद क्या है, उत्तेजना ही तो है। विवेक की उत्तेजना विद्या का मद है और हृदय की उत्तेजना प्रेम का मद।

अनंग—महारानी ठीक है। परन्तु मद और उत्तेजना दोनों एक ही वस्तु हैं। हृदय में भावना की उत्तेजना प्रेम का उत्कृष्ट प्रपंच है। निरंतर शांति तथा क्षणिक सुख उस उत्तेजना के उद्गार हैं।

चन्द्रलेखा—और राग क्या है ?

अनंग—हृदय का एक ओर को खिंचाव, लोहे का चुंबक की तरफ आकर्षण, समुद्र की सुधांशु की ओर लपक, कमल का सूर्य

को देख कर विकास, बस यही तो राग है। मूर्ख संसार स्वरों के उतार-चढ़ाव भरे अलाप को राग कहकर उसका उपहास करता है!

चन्द्रलेखा—नहीं री, गतिहीन में किसी को देखकर स्पन्दन होना, नीरस में रस की वर्षा, हृदयहीन में हृदय बन जाना ही राग है। राग के पकने पर ही अनुराग की उत्पत्ति है। अनुराग आत्मा का गुण है। आत्मा इस संसार में व्याप्त है इसलिये अनुराग प्रकृति के हृदय में जागृत होकर ब्रह्माण्ड में अपना गुण फैलाता है। यही कारण है लताएँ तरुओं से लिपटती हैं। कलियाँ पवन से हँसी करती हैं। भास्कर उषा के पीछे दौड़ते हैं। हिमांशु चाँदनी छोड़ते कतराते हैं। मेरे और तेरे हृदय का भी यही हाल है। (कुछ सोचकर) सखी, करहाट से कोई समाचार नहीं आया। जब से भाई राजसिंहासन पर बैठे हैं तब से प्रजा का क्या हाल है यह मालूम नहीं हुआ? मुझे भय है, पड़ोसी शत्रु कहीं फिर सिर न उठा रहा हो?

सखी—महारानी, शोच न कीजिये। प्रतापी महाराज के होते हुए किसी की क्या सामर्थ्य जो सिर उठावे।

(एक दासी का प्रवेश)

दासी—महारानी जी—अनर्थ हो चला था—(दम फूल जाने से कुछ चुप रहकर) हे विधाता, तूने यह क्या किया?

चन्द्रलेखा—(घबरा कर) क्यों क्या हुआ? अरी, कुछ कह भी तो सही।

दासी—महारानी जी, क्या कहूँ, महाराज के अंगरक्षक ने अभी आकर कहा है कि आज प्रातःकाल तुंगभद्रा के किनारे टहलते हुए महाराज एकदम मूर्छित हो गये।

चन्द्रलेखा—(स्तम्भित सी होकर) क्यों क्या हुआ—कह जल्दी कह। महाराज अब कुशल से तो हैं ? क्या बात थी ? बता जल्दी बता।

दासी—देवी, मैं क्या जानूँ, अंगरक्षक कह रहा था कि किसी दैवज्ञ ने आकर कल्याण-राज्य का समाचार सुनाते हुए कहा—"महाराज सोमेश्वर ने अपने राज्य में महाराज का नाम लेने की भी मनाही कर दी है।" वह कुछ यह भी कह रहा था कि महाराज की जय होगी।

चन्द्रलेखा—क्यों महाराज का नाम लेने की मनाही क्यों कर दी ? और उसमें अपने महाराज की विजय क्या होगी री ? साफ़-साफ़ बता। अब तो महाराज ठीक हैं न ?

दासी—अब तो महाराज ठीक हैं। मैंने सुना है कि महाराज सोमेश्वर कुछ भीतर ही भीतर अपने महाराज से डाह रखते हैं। वे इनके ऐश्वर्य, अनेक राज्यों के विजय और अद्वितीय पराक्रम को सह नहीं सकते। इसलिये कुछ लोगों के बहकावे में आकर महाराज से घृणा प्रकट करते हुए उन्होंने इनके नाम लेने की मनाही करा दी है। उनके राज्य में अब कोई भी महाराज का नाम नहीं ले सकता।

चन्द्रलेखा—(विजय गर्व से) ठीक है, क्रोध में जब दुर्बल मनुष्य का बलवान पर वश नहीं चलता तब वह अपने ही दाँत पीसता है, अपने ही होठ चबाता है। मारने वाले के भाग जाने पर साँप पत्थर पर अपने फन फेंकता है। पर भला—मूर्छा क्यों हो गई री ?

दासी—सुना है कि महाराज को इससे बहुत दुःख हुआ, इसी कारण वे मूर्छित भी हो गये।

चन्द्रलेखा—हाँ ठीक है, महाराज अपने भाई से बहुत प्रेम करते हैं, उनका पिता के समान आदर करते हैं; कदाचित् भाई के इस विचार से ही उन्हें इतना दुःख हुआ होगा। क्या महाराज शयनागार में हैं?

दासी—नहीं, अब वे दरबार में बैठे मंत्रियों से गुप्त मंत्रणा कर रहे हैं।

चन्द्रलेखा—अच्छा जाओ—महाराज को मेरा प्रणाम कहो और उनसे प्रार्थना करो कि दासी दर्शनों की इच्छा रखती है।

दासी—जो आज्ञा – (जाती है)

चन्द्रलेखा—महाराज के विरुद्ध भाई का इतना द्रोह? इतनी अवहेलना! इतना अनादर! इतनी स्पर्द्धा! कल्याणराज, क्या तुम भूल गये? यह वही भाई हैं जो पिता के कई बार अनुरोध करने पर भी युवराज न बने। भ्रातृत्व धर्म की रक्षा करते हुए महाराज ने स्पष्ट कह दिया कि बड़े और अग्रज होने के कारण सोमेश्वर ही राज्य के अधिकारी हैं। इतना त्याग! स्वयं महाराज (स्वर्गवासी आहवमल्लदेव) के शत्रुओं को जीता। संसार में सुख, न्याय की व्यवस्था की। अभिमानमंडित शत्रुओं का मान-भंजन किया। नीच और पददलित राज्यों की रक्षा की। कौन नहीं जानता, महाराज (विक्रमादित्य) का प्रताप इस समय सर्वोपरि सूर्य के समान भासमान है। परन्तु कल्याणराज, तुमने इन वीर-श्रेष्ठ भाई का क्या यही आदर किया! स्वार्थ, तू बड़ा प्रबल है। हे विवेकशत्रु, तूने मनुष्य की मनुष्यता पर आघात किया है! पूर्णमासी के चन्द्रमा की चाँदनी के समान स्वच्छ, स्फटिक के समान श्वेत, मानस-हंस के समान निर्मल, कमल के समान

कोमल, नवनीत के समान मृदुल हृदयों को वज्र के समान कठोर, पाप के समान काला, परनिन्दा के समान कुत्सित तूने कब नहीं बनाया ? हे स्वार्थ, डाह, मद, मात्सर्य, और कपट के चार पाए वाले सिंहासन पर बैठकर जब मनुष्य तेरी मंत्रणा से अभिमंत्रित होता है तब तू प्रेम के स्थान पर निर्लेप और निःस्नेह, नम्रता और विनय के स्थान पर स्वभावसिद्ध गम्भीरता धारण कर लेता है। मोक्ष में प्राप्त आत्म-सुख की तरह आत्मा में मनसूबों के सुख-स्वप्न देखता है। विवेक की वह्नि में तेरे दग्ध होने पर तू प्रकृतिसिद्ध संसार के नियम द्वारा अपनी कथा कहता है। "यह संसार स्वार्थमय ही तो है—किसी की मृत्यु पर हम इसलिये नहीं रोते कि हमारा प्रिय चला गया, किन्तु इसलिये कि उसके चले जाने से हमारे सुख में व्याघात होगया। बड़े वृक्ष अपने नीचे उगे हुए पौदों को खाकर आप बढ़ते हैं। नदी-जल अपने मार्ग में बाधा आते देख विकराल रूप धारण कर उसका नाश करने को उतारू हो जाता है। पत्थरों को घिसा कर वह अपना मार्ग निष्कंटक करता है। एक प्राणी दूसरे प्राणी को खाकर अपना निर्वाह करता है। बहुत से मनुष्यभक्षक वृक्ष मनुष्य का रक्त चूस कर अपनी शरीर-वृद्धि करते हैं।" इन प्रमाणों और तर्कों से परिपुष्ट शरीर होकर तू विनय को भय, कर्तव्य को कायरता, धर्म को दिखावा और पूर्वजों की धर्मनिष्ठा को बुद्धिहीनता सिद्ध करता है। स्वार्थ, तुझे शतशः धिक्कार है। तू...(दासी का प्रवेश)

दासी—महारानी की जय हो—महाराज पधारे हैं।

चन्द्रलेखा—(उत्सुकता से खड़ी होकर) मेरे हृदय-मंदिर की अक्षयमूर्ति महाराज पधारे हैं। यह चकोरी उस शरद-धवल-

निर्मल हिमांशु को देखकर कितनी शान्ति लाभ करती है, यह वे ही जानें जिन्होंने विरह-विदग्ध हृदय से प्रियतम का आलिंगन किया है। जीवननाथ, आओ ये आँखें तुम्हारे दर्शन को तरस उठीं हैं।

(विक्रमादित्य का आगमन)

चन्द्रलेखा—(सादर प्रणाम करके लज्जा से) महाराज की जय हो।

(विक्रमादित्य बैठते हैं)

विक्रमादित्य—प्रियतमे, आओ बैठो। (स्वगत) अहो, इस विचारी को क्या मालूम कि भ्रातृद्वितीया का तिलक असमय में ही शत्रु द्वारा पोंछ डाला गया है। (प्रकाश) हृदयेश्वरी, मुझे क्यों बुलाया है ?

चन्द्रलेखा—(खड़ी होकर—नम्रता से सिर झुकाये हुए) नाथ, दासी द्वारा आपकी अस्वस्थता का समाचार सुनकर यह दासी दर्शनों के लिये आतुर हो उठी थी। इसीलिये.....

विक्रम—हाँ, कुछ अस्वस्थता तो हो गई थी, किन्तु अब तो (सँभल कर) ठीक हूँ। करहाट जाने की तैयारी हो रही है। काञ्ची के राजा ने शिकार खेलते हुए तुम्हारे भाई चोलराज को गुप्त षड्यंत्र द्वारा मरवा डाला है। प्रजा फिर विद्रोही हो उठी है। (रानी के मुख की ओर देखकर उसके सिर पर हाथ फेरते हुए) प्रिये, काञ्ची का राजा करहाट को आत्माधीन करना चाहता है। मंत्रियों ने आज ही दूत के द्वारा यह समाचार भेजा है।

चन्द्रलेखा—(भाई की मृत्यु का समाचार सुन हाय-हाय करती हुई मूर्छित हो जाती है तथा दासियों और महाराज द्वारा शीघ्र ही उपचार करने पर संज्ञा प्राप्त करके) हाय, मैं कैसी अभागिन हूँ। एक-मात्र

भाई के वियोग से यह हृदय सदा दग्ध होता रहेगा। हाय, पिता के एक-मात्र उत्तराधिकारी की यह दशा ?

विक्रम—(धैर्य से रानी के आँसू पोंछकर बात बदलते हुए) प्रिये, इधर महाराज सोमेश्वर ने कल्याण राज्य में मेरा नाम लेने पर दण्ड निर्धारण किया है। सब तरफ़ से विपत्ति ही है।

चन्द्रलेखा—(आवेश में आकर) महाराज, आज्ञा हो तो इस बार युद्ध में मैं भी आपके साथ चलूँ ?

विक्रम—किन्तु इतनी सैन्य के साथ विद्रोही देश में तुम्हारा जाना कितना हानिकर है प्रिये !

चन्द्रलेखा—प्राणनाथ के साथ मुझे कुछ भी भय नहीं है।

विक्रमादित्य—नहीं रानी, तुम यहीं रहो।

चन्द्रलेखा—(सिर झुकाकर सोचती हुई) जो महाराज की आज्ञा, किन्तु जीवननाथ, आप के चरण-दर्शन के बिना यह दासी किस प्रकार रह सकेगी ?

विक्रम—(स्वगत) इसके जाने पर राज्य की रक्षा में विघ्न पड़ेगा। (प्रकाश) नहीं, तुम्हारा जाना श्रेयस्कर नहीं है। अब मैं जाता हूँ। कुछ युद्ध-सम्बन्धी विचार करना है।

(जाते हैं)

चन्द्रलेखा—दोनों तरफ़ विपत्ति के बादल मँडरा रहे हैं। गुप्त षड्यंत्र की बिजली चमक रही है। दोनों दिशाओं में अजगर साँप मुँह फाड़े हुए षड्यंत्र के पवन से प्रेरित महाराज का भोजन किया चाहते हैं। कल्याणराज ज़रूर इस अवसर पर पाण्ड्य के राजा से मिलकर किसी गुप्त अभिसन्धि के द्वारा महाराज का अनिष्ट चाहेगा। इधर हमारे महाराज छल-छिद्र और कपट-प्रबन्ध

से बिलकुल अनभिज्ञ हैं। मेरा इस समय यही कर्तव्य है कि किसी प्रकार इन दुष्ट राजाओं की अभिसन्धि को जानकर महाराज की सहायता करूँ। अहह, सिंह को पकड़ने के लिये गीदड़ों ने सभा की है। प्रातःकाल की ओस चाटकर रहने वाले साँप सुधांशु की ओर मुँह बाये जीभ लपलपा रहे हैं। (सखी अनङ्गमुद्रा को इशारे से बुलाकर) सखी, सारा समाचार तुम जानती ही हो। महाराज की सोमेश्वर और चेङ्गी के गुप्त षड्यंत्र से रक्षा करनी होगी। (कुछ कान में कहकर) अब हमारा यही कर्तव्य है न ?

बनो मायावी कपटी संग,
अन्यथा अविजय है प्रत्यंग।

अग्नि नाश को जल हो जाना, जल को वह्नि प्रचण्ड।
दुष्ट शत्रु को कूटनीतियों का, धारण कर दण्ड।
शिला खण्ड होती लोहे से, लोह वज्र से भंग।
लक्ष्य भेद चिन्ता में डूबे, बाहर सुन्दर रंग॥

बनो मायावी कपटी संग,
अन्यथा अविजय है प्रत्यंग।

घन में तडितलता सम छिपकर, करते रहना कार्य।
शान्त उदधि में वाडव सम बन, ऊपर से आहार्य।

जहाँ हो रिपु का दुर्बल अंग,
मर्मबेधन द्वारा कर भंग।
बनो मायावी कपटी संग,
अन्यथा अविजय है प्रत्यंग॥

शत्रु चेष्टाओं से रहते, जो जन विज्ञ नितान्त।
जीतेंगे वे छल के बल से, रिपु का दल दुर्दान्त॥

बुद्धि-पाटव का पूर्ण प्रसंग,
घात-प्रतिघातों का यह जंग।
बनो मायावी कपटी संग,
अन्यथा अविजय है प्रत्यंग॥

(गाती हुई एक ओर चली जाती हैं)

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

(करहाट का राजपथ, एक तरफ ऊँचे स्थान पर एक व्यक्ति व्याख्यान दे रहा है झुण्ड के झुण्ड लोग सुन रहे हैं)

व्याख्याता—वीरो, तुम्हें मालूम है हमारे महाराज को शिकार खेलते हुए सिंह ने मार डाला है ?

एक श्रोता—(बीच में ही) झूठ है, सुना है पांड्य के लोगों ने मिलकर उन्हें मारा है।

व्याख्याता—नहीं यह झूठ है, सिंह ने ही महाराज को अकेला पाकर उनपर आघात किया था, पांड्यराज हमारे मित्र हैं।

दूसरा श्रोता—नहीं, उन्होंने हमारे महाराज के पिता से विद्रोह करके युद्ध किया था।

व्याख्याता—किंतु, उसके बाद फिर संधि हो गई थी। युवराज के सिंहासन पर बैठते ही पांड्यराज ने प्रसन्नता प्रकट

की थी। इस समय हमारे देश का कोई राजा नहीं है, इसी विचार से पांड्यराज व्यवस्था और सुप्रबन्ध के लिए राज्य की बागडोर अपने हाथ में लेना चाहते हैं।

तीसरा श्रोता—क्या पांड्यराज हमारा राज्य नहीं छीन लेंगे?

सब—ज़रूर! हम उनको राजा नहीं मान सकते। हम उनका राज्य अपने देश में न होने देंगे।

व्याख्याता—(सुनो सुनो—शांति हो जाती है फिर कहने लगता है) इस समय हमारे देश में कोई राजा भी तो नहीं है। इसीलिये महाराज पांड्य यह विचार कर रहे हैं।

एक—क्यों, महाराज विक्रमादित्य तो हैं, उनकी रानी चन्द्र-लेखा राज्य की अधिकारिणी हैं। (गड़बड़ मचती है)।

व्याख्याता—महाराज विक्रम हमारे देश से दूर के राजा हैं। वे अपने देश का राज्य करेंगे, कि यहाँ का? इसके अतिरिक्त वे हमारे देश के संबंध में कुछ भी नहीं जानते। उनकी अपेक्षा तो पांड्यराज ही राज्य का ठीक-ठीक प्रबंध कर सकते हैं। वीरो, इस समय हम सब का कर्तव्य है कि करहाट देश की रक्षा करते हुए हम सब लोग पांड्यराज को सहायता दें। पांड्य-राज चेङ्गी ही हमारी ठीक-ठीक रक्षा करेंगे।

सब—ठीक है, ठीक है।

(प्रजा में से कुमार नामक एक नवयुवक उठकर मंच पर आता है)

कुमार—भाइयो! यह बड़ा अंधेर है कि एक विदेशी राजा हमारे ऊपर राज्य करे। क्या तुम नहीं जानते कि पांड्य देश से हमारा पुराना बैर है। पांड्यराज प्रजा को फुसला कर करहाट देश को हड़पना चाहता है।

सब—ठीक है ठीक है, हम कभी भी पांड्य का राज्य अपने ऊपर न होने देंगे।

कुमार—हम सब महारानी चन्द्रलेखा को राज्य का भार सौंपेंगे।

सब—ठीक है, ठीक है।

कुमार—तुम्हें मालूम है हमारे देश में इस समय पांड्यराज के (पहले बोलने वाले की तरफ़ इशारा करके) दूत अपना प्रचार कर रहे हैं और मैं यह निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि हमारे राजा को मरवाने वाले पांड्य राजा हैं।

सब—(क्रोध से) ठीक है। आओ इसको मार गिरायें (सब झपटते हैं। मारो मारो का शोर मचता है। सब लोग तितर-बितर हो जाते हैं। फिर इकट्ठे होकर सुनते हैं।)

कुमार—भाइयो! हमारी नसों में करहाट का खून है। हमारी मातृभूमि पर विदेशी का चरण पड़े, वे लोग हमारे ऊपर राज्य करें; पांड्य लोग हमें पीड़ित करके हमारे ऊपर बलात्कार करें; और हम बैठे हुए यह सब देखें? करहाट की भूमि यह सब अन्याय सहती रहे, क्या ऐसी तुम्हारी इच्छा है?

सब—नहीं, कभी नहीं। (अभिमान से) हम कटकर मर जायँगे, परंतु पांड्य को अपना राजा न होने देंगे।

कुमार—यदि तुम किसी विदेशी का राज्य नहीं चाहते, तो सब मिलकर प्रधान मंत्री श्रीमान् साम्ब जी की आज्ञा मानो और रानी चन्द्रलेखा को अपनी स्वामिनी बनाओ। महाराज विक्रमादित्य रानी के साथ शीघ्र ही यहाँ आया चाहते हैं।

सब—ठीक है हम रानी जी को अपनी स्वामिनी बनायेंगे।

(सभा विसर्जित होती है)

एक नागरिक—अरे, अब तो चन्द्रलेखा हमारे ऊपर राज्य करेंगी !

दूसरा—हम कुछ नहीं जानते--जो हमारी ज़मीन माफ़ कर दे वही राजा बने।

तीसरा—और मुझे महल के सामने खाली मैदान में घर बनवाने दे।

चौथा—मेरे यहाँ बाहर से आने वाले माल पर जो चुंगी न ले, वही राजा बने।

पहला—और तुम एक के चार करते रहो।

दूसरा—सेर का चौदह छटाँक तोलते रहो।

चौथा—और तुम मुफ्त की ज़मीन जोतते रहो सारा माल-मता घर में भर लो।

पाँचवाँ—अरे मूर्खो, तुम राज्य की व्यवस्था नहीं जानते, क्या राजा सबकी बातें जानता है ?

दूसरा—नहीं जानता तो राजा किस बात का ? वह सब तो जानता ही है।

तीसरा—फिर उसे हम राजा ही क्यों कहते हैं ?

चौथा—फिर उसके राजा बनने से क्या लाभ ?

पहला—तुम मूर्ख हो, समझते तो कुछ हो ही नहीं। अपनी अपनी हाँकते हो। अरे, राजा सब कुछ जानता है पर सब के साथ इस प्रकार की दया दिखावे तो राज्य कैसे चले।

दूसरा—भाई राज्य चले या बैठ जाय हम तो यही चाहते हैं।

तीसरा—हम भी यही चाहते हैं।

चौथा—हम भी यही चाहते हैं।

(सब एक तरफ जाते हैं)

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

(राजमहलों के एक भाग में मंत्रिमंडल बैठा है)

प्रधानमंत्री—भाइयो, महाराज विक्रमादित्य का समाचार आगया है, वे सेना सहित आ रहे हैं।

दूसरा मंत्री—किन्तु महाराज, चेङ्गी ने अपने दूतों द्वारा अपने राज्य के गुण और अपनी निष्पक्षपातिता तथा राज्य की भलाई का प्रचार कराना प्रारंभ कर दिया है इसका क्या उपाय है ?

प्रधान मंत्री—इसका मैंने प्रबन्ध कर दिया है। कुछ दूत इस काम पर लगाये हैं।

(एक चर का प्रवेश)

चर—जय हो मंत्री जी की ! महाराज, कल्याण का राजा सोमेश्वर चेङ्गी की सहायता के लिये आरहा है।

प्रधानमंत्री—यह तो बुरा हुआ। सोमेश्वर महाराज विक्रमादित्य का भाई है। महाराज उसके सामने हथियार नहीं उठायँगे, क्योंकि वे बहुत ही भ्रातृभक्त हैं।

दूसरा मंत्री—किन्तु न्याय-पथ को वे किसी प्रकार न छोड़ेंगे।

प्रधानमंत्री—यह तो ठीक है पर सन्देह का स्थान तो हो ही गया।

दूसरा मंत्री—मुझे विश्वास है कि महाराज विक्रमादित्य हमारे देश की आपत्ति का ही अधिक ध्यान रखेंगे।

दूत—चेङ्गी अपने दलबल सहित आया ही चाहता है।

प्रधानमंत्री—कोई बात नहीं, इसकी तो हमें प्रतीक्षा थी ही। (सेनापति से) महाशय, आप तो कर्तव्यपालन के लिए सन्नद्ध हैं ही न?

सेनापति—(कुछ ऊपर के मन से) हाँ हैं ही।

प्रधानमंत्री—'हाँ हैं ही' का क्या मतलब! क्या आप युद्ध को उद्यत नहीं हैं।

सेनापति—क्यों नहीं, पर.....

प्रधानमंत्री—पर क्या?

सेनापति—यही कि इतनी विशाल सेना का सामना मेरी सेना कैसे करेगी। इसके अतिरिक्त उन्होंने बहुत दिन से हथियार भी तो नहीं उठाये हैं मंत्री जी!

प्रधानमंत्री—देखिये सेनापति जी, ये सब बातें आप को पहले ही विदित थीं। अगर आप चाहते तो सब कुछ प्रबन्ध हो सकता था। क्या आप करहाट की नाव को बीच ही में डुबो देंगे। दिवंगत महाराज की आत्मा क्या कहेगी? हम लोगों का प्रधान कर्तव्य है कि जी लड़ाकर इस समय करहाट देश की रक्षा करें। (शोक से सेनापति की ओर देखकर) महाशय! अगर यह काम आपसे न हो सके तो मैं यह काम किसी दूसरे को सौंपूँ।

सेनापति—नहीं मंत्री जी, आप चिन्ता न करें, सब ठीक ही होगा। अच्छा, अब मैं जाकर सेना का प्रबंध करता हूँ।

(जाता है)

प्रधानमन्त्री—मंत्रिन्, दाल में काला है। शायद चेङ्गी ने सोने की चपत दी है ?

दूसरा मंत्री—मेरा भी ऐसा ही विश्वास है। (गुप्त मंत्रणा करते हुए कुछ कान में कह कर) ऐसा ही ठीक है न ?

प्रधानमंत्री—बस यही ठीक है। [जाते हैं]

[पटाक्षेप]

तीसरा अंक

पहला दृश्य

(तुंगभद्रा के तट पर युद्ध की तैयारियाँ हो रही हैं
सेनापति सुवेग निरीक्षण कर रहे हैं)

सुवेग---सेनाएँ तैयार हो चुकी हैं। उनका लक्ष्यभेद, युद्ध-चातुर्य भी महाराज देख ही चुके हैं। योद्धा युद्ध के लिये उत्सुक हो रहे हैं। बस, केवल अब प्रस्थान की आज्ञा ही बाकी है। सैन्य-नियंत्रण के लिये उपयुक्त मनुष्यों की नियुक्ति हो ही चुकी है। महाराज के अंगरक्षक तथा उनकी सेना की टुकड़ी में सब को यथानियम सन्नद्ध कर दिया गया है। इस बार फिर युद्ध होगा। कदाचित् सोमेश्वर भी कांची का साथ देगा। ऐसी अवस्था में महाराज भ्रातृभाव के फेर में पड़कर कहीं उपरत न हो बैठें। अच्छा, समय पर देखा जायगा। युद्ध मुझे कितना प्रिय लगता है, मानों मैं युद्ध के लिये ही पैदा हुआ हूँ। ठीक है, यदि युद्ध न हो तो हमारी वीरता-परीक्षा का अवसर ही कब आवे ? संसार भी तो एक युद्ध-स्थल है। संसार में आकर युद्ध-स्थल से भागना मनुष्यत्व और क्षत्रियत्व को कलंकित करना है। मैंने भी कितने युद्ध किये। परन्तु युद्ध की तृष्णा अभी शान्त नहीं हुई। युद्ध का नाम सुनकर मेरी धमनियों में रक्त संचरित हो उठता है। भुजाएँ फड़कने लगती हैं। पैर अपने आप उठते हैं। चन्द्रकेतु के बाद

जब से सेनापति का पद मुझे मिला है तब से महाराज भी मुझ पर अधिक प्रसन्न हैं। हा —चन्द्रकेतु कितना दुष्ट निकला! उस ने वीरता में धब्बा लगा दिया। उस लंपट ने स्त्रियों को सताया। उनसे व्यभिचार किया। कितना घोर अन्याय है। हमारे महाराज भी कितने क्षमाशील हैं। उन्होंने उसे पदच्युत करके ही संतोष किया। यदि मैं उनकी जगह होता तो (क्रोध से) उसे कुत्तों से नुचवा डालता। वीरता में धब्बा लगानेवाले उस कलंक को तुरंत यमलोक पहुँचा देता। हम लोग क्षत्रिय हैं। विधाता के विधान में वीरता, शौर्य, और अन्याय-नाश के लिये क्षत्रियत्व ही हमारे भाग में आया है। हाँ, तो ये सब बातें फिर होंगी—चलूँ देखूँ क्या कुछ और करना बाक़ी है।

(एक आदमी का प्रवेश)

आगन्तुक व्यक्ति—जय हो सेनापति की। (अकड़ कर) नौकरी की इच्छा से मैं श्रीमान् की सेना में सम्मिलित होने आया हूँ।

सुवेग—(देखकर) भाई, तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है?

आगन्तुक—मेरा नाम नृसिंह है महाराज,

सुवेग—अच्छा नृसिंह, तुम क्या काम कर सकते हो?

नृसिंह—महाराज, मैं गौड़-देशाधिपति के यहाँ अंगरक्षक का काम करता था। इसी प्रकार की नौकरी के लिए आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

सुवेग—(ध्यान से देखकर) किन्तु नृसिंह, हमारे महाराज के अंगरक्षक तो बहुत हैं। एक अपरिचित व्यक्ति को महाराज का अंगरक्षक नहीं बनाया जा सकता। भला, तुमने गौड़देशाधिपति की सेवा छोड़ी क्यों?

नृसिंह—महाराज विक्रमादित्य का प्रताप सुनकर ही मेरी इच्छा उनकी सेवा करने की हुई है। मुझे आशा न थी कि महाराज किसी भय के कारण मुझे अपनी सेवा में न रखेंगे।

सुवेग—सुनो नृसिंह, महाराज के शुभ्र यश में कलंक लगाना ठीक नहीं। ये तो लौकिक बातें हैं, इन पर ध्यान देना हमारा काम है। यदि भविष्य में तुम कोई विद्रोह कर बैठो, तो उसका भार मुझ पर आकर पड़ेगा। हमारे महाराज अपने बल से त्रिलोकी को विजय कर सकते हैं। सिंह की दाढ़ों में विलास करनेवाले महाराज विक्रमादित्य का संसार में कोई भी अनिष्ट नहीं कर सकता। तुम्हें मालूम है कि गौड़देश के अधिपति उनकी पहली चोट भी न सह सके। (गर्व से) आज संसार में कौन है, जो पराक्रम तथा शौर्य के अवतार महाराज का सामना कर सके!

नृसिंह—(स्वगत) सेनापति, तुम नहीं जानते, बिल्ली छिप कर चूहों को पकड़ती है। कुत्ता जमीन सूँघकर शिकार पर झपटता है। तुम क्या जानो, छल से क्या कुछ नहीं हो सकता? यह कमज़ोरों का अस्त्र है, वीरता की डींग हाँकने वाले इसी के वश में होते हैं। यह कमज़ोरों और कूटनीतिज्ञों का अजुएण अस्त्र है। (प्रकाश) जैसी आपकी इच्छा। दासवृत्ति में निराशा का यह प्रथम लक्षण है। सेवा में सन्देह है। किन्तु सेनापतिजी! मैं किस प्रकार आपको विश्वास दिलाऊँ कि मैं विद्रोह नहीं कर बैठूँगा। विद्रोह, सेवा में विद्रोह यह तो पहली बार सुना है। विद्रोह किसे कहते हैं, आज यह पहली बार आपसे ही सुना है। सेनापति! वीरता और संशय ये विरुद्ध गुण हैं। विश्वास पर

ही संसार की स्थिति है। महाराज गौड़ की सेवा में जाने पर यदि वे हमारे चरित्र में सन्देह करते तो हम वहाँ कैसे टिक सकते ?

सुवेग—तुम्हारी बातें तो बड़ी आकर्षक हैं। किन्तु.....

(सैन्य निरीक्षण करने आये हुए महाराज विक्रमादित्य का प्रवेश)

विक्रमादित्य—सेनापतिजी, सब ठीकठाक है न ?

सुवेग—(ससंभ्रम उठकर प्रणाम करते हुए) महाराज की जय हो, श्रीमान् के चरण-प्रताप से क्या कुछ कमी रह सकती है ?

विक्रमादित्य—(आगन्तुक की ओर देखकर) यह कौन है ?

सुवेग—महाराज, गौड़ देश से आया हुआ यह व्यक्ति श्रीमान् की चरण-सेवा करना चाहता है। किन्तु इसके सम्बन्ध में कुछ भी परिचय न होने से मैंने श्रीमान् की सेवा में नियुक्त करने की मनाही कर दी थी।

विक्रमादित्य—(शान्ति से देखकर) मनुष्य का आकार ही उसका परिचय है ! इसकी इच्छा में आघात क्यों हो ? इसको नियुक्त कर देने में हर्ज ही क्या है, क्यों सेनापति !

सुवेग—(सिर झुकाकर) जैसी महाराज की आज्ञा। परन्तु अज्ञात कुलशील.....

विक्रमादित्य—नहीं नहीं, कुलशील क्या, किसी की इच्छा में निष्कारण व्याघात ही क्यों हो—(नृसिंह के प्रति) आज से तुम हमारे पास नियुक्त हुए। (जाते हैं)

सुवेग—(एक सिपाही से) जा, इसे महाराज की ड्योढ़ी पर पहुँचा दे। वहाँ प्रधान अंगरक्षक के सामने लेजाकर महाराज की आज्ञा सुना देना।

(नृसिंह प्रणाम करके सिपाही के साथ जाता है)

सुवेग—ठीक है, नृसिंह ने ठीक ही कहा, वीरता में संदेह को कोई स्थान नहीं। यही कारण है महाराज ने आते ही स्थान देकर इसे रख लिया। किन्तु मैं क्या करूँ, मेरा तो मन नहीं मानता। फिर भी प्रधान अंगरक्षक से कहकर इसकी खबरदारी करनी ही होगी।

दूसरा दृश्य

(कांची के राजा का मंत्रणागार; चेङ्गी बैठा हुआ युद्ध के सम्बन्ध में सोच रहा है)

चेङ्गी—महाराज सोमेश्वर हमारे हितू हैं। उन्हीं के अनुरोध और प्रेरणा से हमें चोलवंश के नाश का अवसर मिला है। उन्हें विक्रमादित्य से स्वाभाविक घृणा है, और मुझे चोलराज्य के हथियाने की चिन्ता है। इस कार्य में दोनों के काम सिद्ध होंगे। कार्य एक है और फल भिन्न हैं। एक प्रहार से दो पक्षियों का विघात होगा। मेरा इसमें हर्ज ही क्या है? बात भी ठीक है। ज़हर से ज़हर मारा जा सकता है। लकड़ी काटने को कुल्हाड़ी में लकड़ी का ही बेंटा लगाने की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार चालुक्यवंश का नाश उसके भाई सोमेश्वर की प्रेरणा से ही हो जायगा। विक्रमादित्य का दर्पदलन भी उसका भाई ही करे इसका सब प्रबन्ध मैंने कर दिया है। सोमेश्वर इस युद्ध में मेरी सहायता करेगा। उसका एक आदमी चण्डांशुक भी विक्रमादित्य का अंगरक्षक बन गया है। इधर चंद्रकेतु भी सोमेश्वर की

आज्ञानुसार चण्डांशुक को सहायता देगा। करहाट के सेनापति को हमने कुछ-कुछ अपनी तरफ़ कर ही लिया है। सोमेश्वर भी सेना सहित करहाट पहुँच गया है। छल-कपट से ही युद्ध जीता जा सकता है। कपट का अर्थ है कुत्सित-पट। इसी पट—कपड़े—की आड़ में शत्रु को विजय करना है। कूटनीति की कृपाण को प्रेमरूपी मखमल की म्यान में ढककर ही शत्रु को लुभाना है। यदि लोग काठ की कठपुतली के खेल से अपना जी बहला सकते हैं, यदि बनावटी चित्र से जीवन का मन बहलाव हो सकता है, यदि नाद से मृग को फँसाया जा सकता है, तो मेरी कपट-कूट-कृपाण द्वारा शत्रु अपने अपमान का मनोरंजन करें। विश्वास के श्वास-पवन के साथ उड़ती हुई कपट-प्रवंचना उसके स्वागत के लिये सन्नद्ध होने वाले शत्रु के हृदय में अपना तीक्ष्ण प्रहार करे, यही मेरी मनोभिलाषा है। अभिलाषा की तृप्ति के लिये मनुष्य क्या कुछ नहीं करता, परमार्थ और परोपकार के नाम पर मैंने करहाट की प्रजा को बहकाया है। मेरे दूत राज्य की भलाई की ओट में मेरे स्वार्थ-रूप तरु को सींच रहे हैं। यह मेरी आत्माभिलाषा-साधन का सुलभ सूचीपत्र है। शब्दों की साधुताभरी पंक्तियों में जिस प्रकार व्यंग्य अपना स्थान ढूँढ लेता है, व्याजनिन्दा अलंकार जिस तरह स्तुतिपरक शब्दों में झलकने लगता है उसी प्रकार मेरी परोपकार-पंक्ति में स्वार्थ का व्यंग्य चमक उठे। आज मैं विक्रमादित्य से पहली विजय का बदला भी लूँगा और उसे उसके ही बल से हराकर आत्मतृप्ति करूँगा।

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रति०—जय हो महाराज की, सिंहल के दो राजकुमार दर्शनों की इच्छा से पधारे हैं। आज्ञा हो तो भीतर लाऊँ।

चेङ्गा—(आने दो) सिंहल के राजकुमार, भला किस लिये आये होंगे ? दोनों तरफ से आग लगे, वन को दो और दिशाओं से आग लगाकर बिलकुल भस्मीभूत करने के लिये दो प्रचण्ड अग्नि-कुण्ड तो नहीं आये ? जलती हुई आग में हविष्य डालकर यज्ञ की अग्नि को प्रसन्न करने वाले दो होता तो इकट्ठे नहीं हुए हैं ? आखिर इनके आने का क्या कारण होगा ?

(दोनों आते हैं)

दोनों—कांचीराज की जय हो ! महाराज, संसार और विशेष करके सिंहल को विजय करके एकच्छत्र कहलाने वाले विक्रमादित्य के दर्प दलन के लिये उद्युक्त कांचीराज के युद्धोन्मुख होने पर हम सिंहल से आपकी सहायता के लिये आये हैं।

चेङ्गी—(आनंद से) आइये राजकुमार, हम आपका स्वागत करते हैं। मणि-कांचन-संयोग के समान आपका आना शुभ हो। आओ, खद्योत के प्रकाश के द्वारा घोर रात्रि में दिन की कल्पना करने वाले विक्रमादित्य के अभिमान तोड़ने में आप समर्थ हों, ऐसी मेरी शुभाभिलाषा है। आपका नाम क्या है ?

दोनों कुमार—हम सिंहल महाराज के पुत्र मणिद्वीप और यह सिंधुनाग हैं।

चेङ्गी—आपका इस समय आना शुभ है। भला आप लोग इस युद्ध में कौनसा काम करना स्वीकार करेंगे ?

मणिद्वीप—जो महाराज आज्ञा देंगे वही हम दोनों करेंगे।

खड्गयुद्ध, गदायुद्ध, और मल्लयुद्ध में यह हमारे भाई प्रवीण हैं किंतु कदाचित् विक्रम को बल से हम परास्त नहीं कर सकते। इसलिए षड्यंत्र के द्वारा ही विक्रम पर विजय पाना ठीक होगा। सम्मुख युद्ध में विक्रम को विजय कर लेने पर भी हम उसका नाश तो नहीं देख सकेंगे। इसलिये छल और कपट-नीति का आश्रय लेना ठीक है। यदि आपने इसका कोई प्रबंध किया है तो यह कार्य-भार हमें सौंपिये। हम आवश्यकतानुसार उनसे छद्मरूप से मिलकर उनके नाश का उपाय सोचेंगे।

चेङ्गी—(स्वगत) नीति कहती है एक अपरिचित व्यक्ति को भेद बताना मूर्खता है और इससे कार्यनाश की भी संभावना है, किंतु ये राजकुमार हैं। महलों में रहने वाले लोग शत्रु के राज्य-नाश का उपाय सोच सकते हैं। इसलिये अनवरत होने वाले गुप्त षड्यंत्रों से विज्ञ इन राजकुमारों के हाथ में इस कार्यभार को सौंपना हानिकर नहीं है। इसके अतिरिक्त सिंहलविजय की भीषण प्रतिहिंसा इनमें उत्कृष्ट रूप धारण कर रही है, अतः अपरिचित होने पर भी यह काम इनके द्वारा सुचारुरूप से चल सकेगा। (प्रकट) राजकुमारो! इसमें कोई संदेह नहीं हमने कुछ गुप्त मनुष्य भी इस काम के लिये छोड़े हैं। किंतु वह काम तुम्हारे नियंत्रण में ठीक हो सकेगा, इसका प्रमाण!

मणिद्वीप—प्रमाण, प्रमाण यही है कि हमारा हृदय विद्रोह और प्रतिहिंसा की अग्नि से कर्तव्य के स्फुलिंग उड़ाकर शत्रु के यशरूपी फूंस को भस्म करना चाहता है। महाराज! हृदय को चीर कर दिखाया नहीं जा सकता, अन्यथा हम दोनों के हृदय में पराभव कितना अट्टहास कर रहा है यह श्रीमान् को दिखा

देते ! क्षोभ के ताण्डव नृत्य से शरीर की प्रत्येक नाड़ी समुद्र के ज्वार के समान विद्रोह की ऊर्मि उठाकर लालसारूपी चंद्र को छुआ चाहती है। प्रतिहिंसा औचित्य और मर्यादा की सीमा को उल्लंघन कर, हृदय को चिंतारूपी भँवर में डालकर डुबोया चाहती है। इससे अधिक प्रमाण की क्या आवश्यकता है ? वाणी हृदय का उद्गार है, चेष्टायें उसकी मोहर हैं, उस मोहर से अंकित वाणी ही हमारी इच्छा का प्रमाण है और क्या प्रमाण आप चाहते हैं ?

चेङ्गी—(स्वगत) मेरे चोलवंश-नाश और राज्यलिप्सा की तरह इनका हृदय भी प्रतिहिंसा की आग में धधक रहा है। इन पर विश्वास तो करना ही होगा। (प्रगट) मुझे आप लोगों पर पूर्ण विश्वास है। अस्तु, विक्रमादित्य के भाई कल्याणराज सोमेश्वर करहाट पर हमला करने आगये हैं। उन्हीं की प्रेरणा से यह काम प्रारंभ हुआ है। विक्रमादित्य का पदच्युत सेनापति चंद्रकेतु संन्यासी के वेश में कल्याण के नवीन मंत्री चण्डांशुक (जिसे विक्रम का अंगरक्षक बनाया गया है) की सहायता करेगा। हमारा उद्देश्य इस युद्ध में विक्रम की सेना का नाश करके कूटनीति के द्वारा उसे यमलोक पहुँचा देना है। यदि उसके चुने हुए वीर इस युद्ध में काम आये तो मुझे चंद्रलेखा को बहका कर राज्य छीन लेने में संदेह नहीं रह जायगा और उधर महाराज सोमेश्वर विक्रमादित्य का नाश चाहते हैं। इसलिये युद्ध और कूटनीति का आश्रय लेना पड़ा है। आप लोग यह मुद्रिका लेकर चंद्रकेतु की सहायता करें। (अँगूठी उतार कर देता है) इससे वे लोग आप पर विश्वास करेंगे और उन्हें आप इस प्रकार चलावें कि विक्रम

अपनी सेना से दूर रहे। इधर हम और सोमेश्वर उसकी सेना पर अचानक हमला करके उसे विध्वंस कर देंगे, अन्यथा विक्रमादित्य इतना प्रतापी है कि उसके सम्मुख रहने पर हम युद्ध में विजय प्राप्त नहीं कर सकेंगे। यही हमारा अभिप्राय है। समझ गये न ?

सिंधुनाग—महाराज, आपके इस षड्यन्त्र से शत्रु का नाश होगा, ऐसा हमें पूर्ण विश्वास है।

(चेङ्गी से विदा होकर दोनों राजकुमार जाते हुए मार्ग में)

चंद्रलेखा—अनंगमुद्रा, तुम इतनी चतुरता से इस मूर्ख को वश में कर लोगी इसकी मुझे आशा न थी।

अनंग—महारानी, देखा आपने कितना कपट-जाल है। हमारा आना इस समय हितकर ही हुआ। अब चलिये चलकर चन्द्रकेतु की खबर लें।

(प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

(करहाट से दो कोस की दूरी पर कालीमंदिर में
चंद्रकेतु संन्यासी के वेश में)

चंद्रकेतु—कारण सब प्रस्तुत कर दिये हैं। बस, अब तो कार्यरूप परिणाम की आशा है। अंधकार में इकट्ठे हुए फूँस में आग की चिनगारी लगाने भर की देरी है। नृसिंह को तो मैंने सब कुछ समझा ही दिया है। युद्ध की आड़ में ही अब हमारा

कार्य संपन्न होगा। सोमेश्वर अपने आप को बहुत बुद्धिमान समझे बैठा है परंतु मेरी बुद्धिरूपी दुधारी तलवार विक्रम और सोमेश्वर का काम तमाम कर देगी। (क्रोध से) महाराज विक्रमादित्य, तुमने चन्द्रकेतु-सर्प को छेड़ कर अच्छा नहीं किया। अब उसका दंशन सहन करने को तैयार हो जाओ। हे मद, मात्सर्य और कपट के प्रपंच से रहित महाराज, चन्द्रकेतु की विषाक्त वारुणी को पीकर तुम्हें परलोक को जाना होगा। मेरे स्थान पर सुवेग को नियुक्त करके तुमने कर्तव्य की प्रेरणा से मुझे पदच्युत कर तो दिया है परन्तु तुम्हें क्या मालूम कि मैं तुम्हारा कितना अपकार कर सकता हूँ ? संसार देखे कि एक तुच्छ व्यक्ति क्या कुछ कर सकता है ! मैं तुच्छ हूँ, नहीं मेरे जीवन का ध्येय है राज्याभिलाषा और तुम्हारा नाश।

(दोनों राजकुमारों का प्रवेश)

दोनों राजकुमार—स्वामीजी महाराज, प्रणाम।

चंद्रकेतु—(आश्चर्य से) स्वस्ति राजकुमारो ! सुनाओ तुम्हें इस संसारत्यागी संन्यासी से क्या काम है ?

दोनों राजकुमार—चंद्रकेतु, यह ढोंग छोड़कर मतलब की बातें करो।

चंद्रकेतु—(घबराकर) अरे भाई भूलते हो। मैं चंद्रकेतु नहीं हूँ, मैं तो एक वीतराग, निस्पृह संन्यासी हूँ।

मणिद्वीप - आपके संन्यास की प्रशंसा तो हमने बहुत सुनी है। (चेङ्गी की मुद्रिका दिखाकर) हम तुम्हारे पास विक्रम-नाशरूप कार्य की पूर्ति के लिये आये हैं। महाराज चेङ्गी ने हमें इसी कार्य के लिये भेजा है, समझे।

चंद्रकेतु—समझ गया, सब समझ गया, क्या अब भी न समझूँगा ? भला आप लोग हैं कौन ?

सिंधुनाग—हम हैं सिंहलद्वीप के राजकुमार, विक्रमादित्य से बदला लेने के ही हेतु हम महाराज चेङ्गी के पास आये थे और अब तुम्हारे पास आये हैं। कहो क्या करना चाहते हो ?

चन्द्रकेतु—(हर्ष से) क्या करना चाहते हैं, सुनोगे, तो सुनो। युद्ध होते ही नृसिंह विक्रमादित्य को इसी काली वन में किसी बहाने ले आवेगा, और करहाट सेनापति की सहायता से हम उसका नाश करेंगे।

सिन्धुनाग—भला नृसिंह है कौन ?

चन्द्रकेतु—वही महाराज सोमेश्वर का नवीन मंत्री चण्डांशुक जो इस समय विक्रम का अंगरक्षक है।

सिन्धुनाग—ठीक है। परन्तु क्या तुम्हें विश्वास है कि करहाट का सेनापति इस काम में हमारा सहायक होगा ?

चन्द्रकेतु—(हँसकर) होगा। महाराज चेङ्गी ने उसे अपने वश में कर लिया है। वही उस समय हमारी सहायता करेगा। भला आप लोग किस प्रकार हमारी सहायता करेंगे ?

मणिद्वीप—छल से, कपट से, प्रपंच से, तलवार से और तीर से। समय पर बता देंगे कि हम किस प्रकार इस काम में सहायक होंगे, समझे ?

चन्द्रकेतु—समझा, पर तुम दोनों कोमलाङ्ग राजकुमार इतने बली हो, इसकी मुझे आशा नहीं।

सिन्धुनाग—चींटी कितनी छोटी होती है ? प्राण नाश के

लिये विष की मात्रा ही कितनी चाहिए ? साढ़े तीन हाथ का शरीर और चार अंगुल की कटारी भला इनमें क्या सम्बन्ध है, कैसी समानता है ? बस इसी से समझ लो।

चन्द्रकेतु—ठीक है, वन के लिये ज़रा सी चिनगारी चाहिये, बड़े-बड़े मच्छों को ज़रा सी बंशी की ज़रूरत है। अच्छा, आप लोग यहीं रहें, समय होते ही सूचना दूँगा।

मणिद्वीप—हाँ, युद्ध होने तक हम इसी स्थान पर रहेंगे क्यों भाई सिन्धुनाग ?

सिन्धुनाग—और क्या, आओ तब तक इस वन की अच्छी तरह देख-भाल कर लें।

(एक तरफ को जाते हैं)

चन्द्रकेतु—यह भी अच्छा ही हुआ। एक और एक मिलकर ग्यारह होते हैं। परन्तु इसमें क्या प्रमाण कि ये लोग शत्रुपक्ष के नहीं। पर नहीं ऐसा नहीं हो सकता। ये चेङ्गी के आदमी हैं। विक्रमादित्य की सेना में मैंने इन पुरुषों को देखा ही नहीं। सम्भवतः ये दोनों वीर सिंहल के ही होंगे। मेरा हृदय साक्षी देता है कि इस बार अवश्य इस देश का राजा बनूँगा। अहा, कैसा सुन्दर प्रदेश है। मनुष्य भी तो यहाँ के भोले-भाले हैं। इस जीवन में राजा बनकर प्रजा पर शासन करूँ, बस यही एक साध है (कुछ सोचकर) अच्छा चलूँ; हमारे पक्ष की सेना का क्या हाल है यह भी जान लेना चाहिये।

(जाता है)

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

(रानी चन्द्रलेखा और उसकी सखी अनंगमुद्रा कालीमंदिर से आगे एक गह्वर पर्वतशिखर के शिलातल पर)

चंद्रलेखा—सखी, आज इन प्रांतों को देखकर मुझे अपने बालपन की स्मृति हो आई है।

अनंग—महारानी, स्मृतिपत्रों पर लिखा हुआ संयोग और वियोग का संवाद कितना हृदयमधुर होता है, यह वे ही जान सकते हैं जिनके हृदय है !

चंद्रलेखा—पिताजी के साथ इस पर्वत-शिखर पर इस जलाशय के सामने मैंने कितने दिन बिताये हैं, सिंह की मृगया करते हुए पिताजी प्रायः इधर ही आ जाया करते थे। परंतु इस प्रकृति के गर्भ में इतनी सुंदरता है, इतना विलास है, इतना मद है, यह मुझे पहले नहीं मालूम था। इस पर्वत पर न जाने मैंने कितने सूर्यास्त देखे, कितनी बार चन्द्रोदय देखा, पर अब तो वह स्मृति विषाद और हर्ष के नये आवरण में, आनंद के नये उद्गारों के साथ, माधुर्य के अनोखे मद का पात्र पिलाती हुई मुझे प्रियतम की ओर खींच रही है।

अनंग—राजरानी, इधर देखिये भगवान् अंशुमाली कितने अनोखेपन से अस्ताचल की ओर जा रहे हैं।

चन्द्रलेखा—भास्कर देव अपनी दिन भर की थकावट दूर करने को मानों कमलिनी-किसलयों का अंतिम स्पर्श कर रहे हैं। जान पड़ता है पूर्व दिशा ने अपने स्वामी को सौत पश्चिम दिशा

का आलिंगन करते देख अपना मुख ईर्ष्यारूप काले वस्त्र से छिपा लिया है। आह, स्त्रियों में। कितनी डाह है यह आज ही जाना।

अनंग—नहीं महारानी, निशानाथ के उदित होने पर निशारमणी मदघूर्णित नयनों की लज्जा छिपाती हुई सूर्य का दीपक बुझाने चली है। हृदय के प्रकाश के सामने वह बाहरी प्रकाश में वैसा आनन्द नहीं प्राप्त कर सकती।

चंद्र—ठीक है परन्तु इधर तो देख, सामने जलाशयों में मदमस्त कमलिनी सूर्य को जाते देखकर बाहर से शोक प्रकट कर रही है परन्तु उस ढीठ ने हृदय में रसिक मधुप को स्थान दे रक्खा है। क्या तूने इस कमलिनी की धूर्तता नहीं देखी री ? (क्रोध से आँखें लाल हो जाती हैं) दुष्टे विश्वासघातिनि !

अनंग—(स्वगत) स्त्री-स्वभाव-सुलभ महारानी को अनय दीख पड़ा। (प्रकट) नहीं महारानी, क्रोध क्यों करती हैं। यह मधुप रात्रि के अंधकार में कहीं खो न जाय इसी डर से शाम होते ही अपने घर में आकर बैठा है। कमलिनी ने शरणागत की रक्षा की है महारानी !

चंद्र—(कुछ स्वस्थ होकर) सखी, रात सिर पर आ रही है। नक्षत्र निकल आये। हमें अब लौट न चलना चाहिये क्या ?

अनंग - हाँ महारानी, चलिये चलें परंतु चन्द्रदर्शन तो कर ही लीजिये। निशानाथ अपनी पूर्णकला से उदित हो रहे हैं। यामिनी के पांडुर गंडस्थल में यह चन्द्रमा मानों विधाता के चुंबन का चिह्न है !

चन्द्र—(हँसकर) विहारिणी, तू बड़ी प्रगल्भा है। यह

विधाता के चुंबन का चिह्न है ! या यामिनी के हृदय में स्थित प्रेम का प्रकाश है ?

अनंग—नहीं महारानी, मेरे विचार से आपके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर चन्द्रमा अपनी किरणों को पसार कर प्रकृति सौन्दर्य की भिक्षा माँगने निकला है।

चन्द्र—(मुसकरा कर) अरी तू बड़ी बातून है। बातों ही बातों में तूने नीच चेङ्गी से सारा भेद ले लिया। चन्द्रकेतु को उल्लू बनाया।

अनंग—(लज्जित होकर) सब आपके पुण्यचरणों का प्रताप है अन्यथा इस दासी की क्या सामर्थ्य है जो भेद ले सके।

चन्द्र—सखी, भला महाराज की रक्षा का क्या उपाय किया ? क्या कालीमन्दिर में शत्रु के द्वारा उनके बहकाकर लाये जाने पर ही हमें उन्हें बचाने का प्रयत्न करें, या पूर्व ही इसका कोई प्रबन्ध किया जाय ?

अनंग—दोनों ओर युद्ध की तैयारियाँ हो चुकी हैं, प्रातः-काल होते न होते युद्ध छिड़ जायगा। हमारा यह पहला कर्तव्य है कि सेनापति सुवेग को शत्रु के षड्यन्त्र से सावधान कर दिया जाय।

चन्द्र—परन्तु ऐसा करने से वह हमें पहचान जायगा। फिर संभव है महाराज को हमारे वेशपरिवर्तन की बात मालूम होजाय।

अनंग—(कुछ सोचकर) ऐसा होना संभव है।

चन्द्र—अच्छा हो, अब हम कालीमन्दिर में जाकर शत्रु की गतिविधि देखें। फिर उचित समय पर उस दैवज्ञ के द्वारा सुवेग को समाचार पहुँचा देंगे।

अनंग—पर वह दैवज्ञ है कौन ?

चन्द्र—वह दैवज्ञ सुवेग का विश्वस्त पण्डित है। उसी ने सुवेग के कहने से कल्याण के समाचार महाराज को सुनाये थे।

अनंग—ठीक है चलिये फिर चलें। (चलते-चलते घने जङ्गल में मार्ग भूल जाती हैं)

चन्द्र—अरी, हमारा मार्ग किधर है। मुझे कई बार इधर आने पर भी मार्ग का ज्ञान नहीं रहा। (किंकर्तव्यमूढ़ सी खड़ी होकर दिशा का अनुमान करती हैं फिर दोनों एक ओर को चली जाती हैं)

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

(करहाट को चारों ओर से शत्रु-सैन्य घेर रहा है। महाराज विक्रमादित्य करहाट के प्रधानमन्त्री साम्ब के साथ अपनी सेना की गतिविधि निश्चित कर रहे हैं)

विक्रमादित्य—दक्षिण दिशा में चेङ्गी के साथ हमारे सुवेग सेनापति खड़े हों, पश्चिम की तरफ करहाट का सेनापति अपनी सेना लेकर जाय। उत्तर की तरफ वनवास के राजा जय-सिंह और पूर्व के प्रमुख द्वार पर हम अपनी टुकड़ी के साथ युद्ध करेंगे। (प्रधानमंत्री से) मंत्रिन्! शत्रु के अपनी जगह निश्चित करने से पूर्व ही युद्ध प्रारंभ कर देना चाहिये। आप इन सब की देख-भाल करते रहना। ध्यान रहे कि शत्रु की सारी गतिविधि पर

लक्ष्य रखते हुए आप मुझे खबर देते रहिये, और मेरी आज्ञा पाते ही युद्ध प्रारंभ हो जाना चाहिये।

प्रधानमन्त्री—जैसी महाराज की आज्ञा।

विक्रमादित्य—(सब तरफ देखकर) अच्छा, अब युद्ध शुरू हो जाना चाहिये।

(युद्ध प्रारंभ होता है, चारों ओर से शत्रुओं पर प्रहार होने लगता है, अस्त्र-शस्त्रों की झनकार और मारो-काटो की आवाज आती है। संन्यासी के वेश में चन्द्रकेतु का प्रवेश)

चन्द्रकेतु—युद्ध प्रारंभ हो गया, अब मुझे अपना कार्य साधना होगा। नृसिंह को मैंने समझा ही दिया है वह समय देख कर विक्रमादित्य को वनवास के राजा जयसिंह के बन्दी होने का समाचार देगा, तथा करहाट के सेनापति के अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित खास-खास विश्वस्त सैनिक एक दम अवसर पाकर अकेले आये हुए विक्रम पर हमला कर देंगे। इधर चेङ्गी के प्रधान कूटनीतिज्ञ सिंहल राजकुमार भी उस पर हमला करके उसे यमलोक पहुँचा देंगे। इस तरह हमारा काम सिद्ध होगा। अब मैं चलकर उनको और भी सावधान कर दूँ।

(पूर्व दिशा में विक्रमादित्य और उनकी सेना शत्रु के साथ युद्ध कर रही है, महाराज विक्रमादित्य शत्रु-सेना का संहार कर रहे हैं। इसी समय नृसिंह हाँफता हुआ आता है)

नृसिंह—(विक्रमादित्य से) महाराज, अनर्थ होगया, महाराज जयसिंह युद्ध करते हुए शत्रु के हाथ से मूर्छित पड़े हैं उन्हें बचाइये!

विक्रमादित्य—नृसिंह घबराओ मत। हम चलकर अभी शत्रु से

बदला लेते हैं। (आवेश में आकर उस ओर अकेले ही चल पड़ते हैं) हा ! भाई जयसिंह ! चेङ्गी के साथ मेरा युद्ध सुनकर तुम स्वयं ही युद्ध करने आगये। हा भ्रातृभक्त जयसिंह ! तुम्हें इतना कष्ट हुआ। मैं अभी चलकर व्याज सहित तुम्हारे इस पराभव का बदला लेता हूँ। (ऐसा कहते हुए आगे बढ़ते जाते हैं) कहाँ है मेरा भाई ? कहाँ है जयसिंह ? कौन शत्रु आज यमराज के यहाँ अपना हिसाब-किताब करने जाना चाहता है ?

(करहाट के विद्रोही सैनिक 'मारो, पकड़ लो, भाग न जाय' कहते हुए विक्रम को घेर लेते हैं)

विक्रमादित्य—बताओ कहाँ है मेरा शत्रु ? कहाँ है जयसिंह का विघातक ! (यह कहते हुए आक्रमणकारियों पर टूट पड़ते हैं) भाई के विघातको ठहरो, मैं तुम्हें अभी यमपुर की राह दिखाता हूँ।

(चारों तरफ शत्रु वन में से निकल विक्रमादित्य पर आक्रमण करते हैं)

[पटाक्षेप]

चौथा अंक

पहला दृश्य

(सायंकाल का समय, करहाट के राजमहल में महाराज विक्रमादित्य क्षत-विक्षत अवस्था में पड़े हैं, मंत्री आदि सब लोग आस-पास बैठे हैं)

प्रधानमंत्री—यह किसे मालूम था कि घर में ही विभीषण भरे हैं। अहो! विश्वासघात! इतना भयंकर कर्मकाण्ड होगया और मैं चेङ्गी की तरफ़ व्यस्त रहा। नृसिंह का भी पता नहीं! हा हन्त! कहते हैं सिंहल के राजकुमारों ने महाराज को जीवन दान दिया। एक बारगी ही हजारों शस्त्र महाराज पर गिरे। शत्रु ऐसे बीहड़ स्थान में महाराज को बहकाकर ले गये, जहाँ से उनका घोड़ा लौट भी नहीं सकता था, महाराज स्वयं खुलकर युद्ध भी नहीं कर सकते थे। शत्रुओं ने छिपे-छिपे वेश बदल कर एक दम प्रहार किया। फिर भी महाराज ने आधे से अधिक शत्रुओं का नाश कर दिया! सिंहल के राजकुमार भी घायल अवस्था में हैं। यह कुशल हुई कि मैं समाचार देने के लिये महाराज की टुकड़ी की तरफ़ बढ़ा और महाराज को वहाँ युद्ध करते न देख अंगरक्षक को पूछने पर ज्ञात हुआ कि नृसिंह उन्हें जयसिंह की मूर्छा का समाचार सुनाकर उधर लेगया है। मैंने अंगरक्षक से कहा यह सब झूठ है। महाराज जयसिंह सकुशल हैं, उन्होंने तो शत्रु को मारकर पीछे हटा दिया है। इस पर प्रधान अंगरक्षक कुछ संदेह करके मुझे और ख़ास-ख़ास आद-

मियों को लेकर उसी ओर चला। इतने में मेरे दूतों ने (जिनको मैंने सेनापति की देख-रेख के लिये लगाया था) आकर कहा कि हमारा सेनापति और उसकी सेना अपने स्थान पर नहीं है। आगे बढ़ने पर हमें नगर से दो कोस आगे महाकाली के वन में मारो-काटो की ध्वनि सुनाई दी। भय और जिज्ञासा से हमने वहाँ जाकर जो देखा उसका यह मानवीय जिह्वा वर्णन नहीं कर सकती। सब ओर शत्रुओं ने महाराज को घेर लिया है। वे क्षत-विक्षत होकर युद्ध कर रहे हैं। इसके बाद कुछ और शत्रुओं ने झाड़ी से निकल कर महाराज के ऊपर एक दम प्रहार किया—एक दम तलवारें उठीं। महाराज पर कुछ सैनिक एक दम तलवारें उठाना ही चाहते थे कि उन्हीं में दो राजकुमारों जैसे व्यक्तियों ने उन आगन्तुक आक्रमणकारियों को मार गिराया। इसी पर दूसरे हल्ले ने 'मारो-काटो' की ध्वनि करते हुए महाराज पर पीछे से आक्रमण किया। इधर महाराज का घोड़ा घायल होकर गिर पड़ा और हमारे पहुँचते-पहुँचते महाराज भी बेतरह घायल हो गये। इतने में हमारे साथियों ने उन शत्रुओं को मार कर भगा दिया।

(एक दूत का प्रवेश)

दूत—महाराज विक्रमादित्य और करहाट मंत्री की जय हो। शत्रु लोग युद्ध से हारकर भाग खड़े हुए। सेनापति सुवेग कुछ बंदियों के साथ महाराज की सेवा में पधारे हैं।

प्रधानमन्त्री—सादर भीतर ले आओ।

(सेनापति सुवेग और कुछ बन्दियों का प्रवेग)

सुवेग—महाराज की जय हो!

प्रधानमन्त्री—आइये सेनापति, कहिये क्या समाचार है ?

सुवेग—मंत्री जी, चेङ्गी को तो मार कर मैं पहले ही भगा चुका था। तत्पश्चात् अपने विश्वस्त मनुष्य (देवज्ञ) से महाराज के साथ छल-कपट का समाचार सुनकर मैं उस ओर बढ़ा। महाराज को मैंने वहाँ न पाया तब अपने कुछ आदमियों द्वारा यह सुनकर कि महाराज को सुरक्षित रूप से आप ले गये हैं मैं उन अन्यायकारियों की तरफ़ बढ़ा। वहाँ पहुँच कर मुझे कुछ भागते हुए व्यक्ति दीखे, मैंने तुरन्त ही उनका पीछा किया और थोड़े से युद्ध के बाद उनको बन्दी कर लिया। उन में एक संन्यासी, यह दुष्ट नृसिंह तथा करहाट का सेनापति हैं। ये सब आपके सामने खड़े हैं। महाराज का क्या हाल है ?

प्रधानमंत्री—महाराज अभी कुछ अस्वस्थ हैं, उपचार हो रहा है। अभी आप इन सब को बन्दी रखिये। महाराज स्वयं इनका विचार करेंगे। किन्तु यह क्या, वे दोनों राजकुमार किधर चले गये !

बाकी सभासद्—अभी अभी तो वे यहाँ थे, यहीं कहीं होंगे।

प्रधानमंत्री—नहीं नहीं, उन्हें ढूँढो, महाराज के जीवनदाता वे दोनों राजकुमार कहीं जाने न पावें। (देखभाल होती है)

सुवेग—(महाराज विक्रमादित्य को उस दशा में देखकर दुःख और क्षोभ से) हा वीरता के धनी, शौर्य के सागर, पराक्रम के अवतार श्रीमान की यह दशा। शत्रुओं ने बाहु-युद्ध से हारकर छल का सहारा लिया। नीच सोमेश्वर, तुम चालुक्यवंश रूप कांचन के प्याले में मद के समान हो। स्वर्गीय आहवमल्लदेव के अग्निकुल में धूमकेतुरूप पैदा हुए हो। हे नक्षत्र, तुम महाराज

विक्रमादित्यरूप चन्द्र की समानता नहीं कर सकते। (कुछ सोचकर) भागे हुए चेङ्गी और सोमेश्वर अब भी अपनी दुष्टता से नहीं चूकेंगे। इनका युद्ध से भागना भी रहस्य से शून्य नहीं है। मेढ़ा जब पीछे हटता है तब झपटने के लिये ही। इस बार अपने भोले-भाले महाराज की हमें खूब सावधानी से रक्षा करनी चाहिये। अच्छा, अब चलूं, महाराज के पहरे का प्रबन्ध ठीक-ठीक होना चाहिये। (प्रधानमन्त्री के साथ एक ओर को जाता है)

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

(बन्दीवेश में चन्द्रकेतु)

गाते हुए:—

हाय नौका डूबी मझधार!
हुआ मिट्टी यह सब व्यापार॥
असफलता के गरल सिन्धु में ग्राह-ग्रह परिवार,
दीप-शिखा से उठी अमित है तीव्र धूम की धार।
अभिलाषा गृह में विधि ने दे असाफल्य चिनगारी,
भस्मसात् कर दिये मनोरथ कूटनीतियाँ हारीं।
कर्म का फल का भिन्न प्रकार,
बना परिणाम मौत का द्वार।
हाय नौका डूबी मझधार!

हाय, अन्त में असफलता ही पल्ले पड़ी। साँप के फनों को कुचल

कर शत्रु सकुशल लौट गया। सिंह की दाढ़ों से मृग सरक गया। यौवन की उमंग के समान मनोरथों का रथ टूट-फूट कर छिन्न-भिन्न हो गया। उलटी गंगा वही। लेने के देने पड़े। (घबरा कर) राज्य की बजाय मृत्यु पल्ले पड़ी। भाग्य का चक्र उलट गया। (कुछ सोचकर) अच्छा, कुछ न कुछ निकलने का उपाय तो करूँगा ही। अब तो मुझे भय केवल नृसिंह से है। कहीं उसने मार के डर से सब कच्चा चिट्ठा कह सुनाया तो सब गुड़-गोबर हो जायगा।

[पटपरिवर्तन]

तीसरा दृश्य

(करहाट से कुछ दूर पारड्य की सीमा पर सोमेश्वर और चेङ्गी एक स्थान पर कुछ सोचते हुए)

चेङ्गी—हमारी सब सेना नष्ट हो गई। हमें विक्रमादित्य के हाथों बुरी तरह हार खानी पड़ी। गुप्त अभिसंधि भी सफल न हो सकी। बड़ा अनर्थ हुआ।

सोमेश्वर—महाराज, इतने हताश होने की आवश्यकता नहीं। देखिये—

कर्तव्यों को असफलता ने कब हँस किया प्रणाम नहीं,
सूर्योदयमय उषाभाल में छिपी हुई क्या शाम नहीं ?
गति में स्थिति का, मतिमानों में कब न मौर्ख्य दलबल आया,
है प्रकाश में छिपी हुई क्या नहीं तिमिर की ध्रुव छाया ?
जीवन में नश्वरता, सुख में दुख का है सम्बन्ध अटूट
आशा में निराश भावों की, स्नेहों में है कहाँ न फूट।

किन्तु करो कर्तव्य इसी में जीवन का है छिपा विचार
एक अग्नि-कण धूसर हो यदि कर सकता वन भस्म अपार ॥

हमारा चलाया हुआ कूटनीति का बाण खाली नहीं जा सकता ! थोड़ी ही देर में हमें किसी शुभ संवाद सुनने के लिये तत्पर रहना चाहिये। यद्यपि प्रत्यक्षरूप से हमारा पराभव हुआ, हम विक्रम की युद्ध-चतुर सेना का सामना न कर सके, यह सही है; किन्तु कूटनीति के द्वारा किये गये विघातों का वह सामना नहीं कर सकता। चन्द्रकेतु और तुम्हारे उन दोनों सिंहल-कुमारों ने अवश्य कुछ गुल खिलाया होगा।

(दूत का प्रवेश)

दूत—महाराज वे दोनों सिंहलराजकुमार पधारे हैं।

चेंगी—(हर्ष से) सादर भीतर ले आओ। (दूत का प्रस्थान) (सोमेश्वर से) आपकी धारणा ठीक ही प्रतीत होती है। अवश्य ही आपकी कूटनीति ने कुछ न कुछ परिणाम दिखाया है।

(दोनों छद्मवेशी राजकुमार मार्ग में परस्पर बातचीत करते हुए)

चन्द्रलेखा—अनंगमुद्रा, कल रात को मार्ग भूल जाने से हम उस दैवज्ञ को ठीक समय पर सूचना न दे सकीं। इसीलिये महाराज को इतना कष्ट हुआ।

अनंग—सखी, बीती बात को यहीं छोड़कर हमें शत्रु के षड्यंत्र पर अब पूर्ण ध्यान रखना होगा।

(दोनों राजकुमारों का प्रवेश)

दो०रा०—जय हो महाराज चेङ्गी तथा महाराज सोमेश्वर की।

सो० चे०—(संभ्रम से उठकर) आइये राजकुमार, कहिये हमारे शत्रु की क्या अवस्था है ?

चन्द्रनाग—(स्वगत) कुटिलता के दूतो तथा स्वार्थ के साधको, अब तुम्हारे नाश की कामना से ही हम तुम्हारे हितू हैं। तुम्हारा षड्यंत्र तो कुछ कुछ सफलता की सीढ़ी पर चढ़कर हमारा नाश करना ही चाहता था। पर अब उलटी तलवार से तुम दोनों का सिर न काटा तो बात ही क्या? (प्रकट) कुछ शीघ्रता तथा समय की प्रतिकूलता से हमें निराशा का मुख देखना पड़ा। सब काम ठीक ही था परन्तु शत्रुओं ने किसी तरह पता पाकर विक्रमादित्य की रक्षा करके उन्हें बचा लिया। इस समय विक्रमादित्य मूर्छित हैं तथा आपकी सेना के कुछ लोग पकड़े भी गये हैं ऐसा सुना है। अब बताइये क्या उपाय किया जाय?

सोमेश्वर—उपाय, उपाय बहुत हैं। (चेंगी से) एक बार फिर विश्वास की वेदी पर साधुता का आसन जमाना होगा और कूटनीति की वह्नि में वाक्पाटव के हविष्य के साथ शत्रुरूप स्रवा से घृत की आहुति देनी होगी।

चेङ्गी—इस बार फिर क्या करने का विचार है महाराज?

सोमेश्वर—विचार, विचार तो बहुत कुछ हैं। हर एक विचार हर समय प्रकट नहीं किये जा सकते महाराज, समय आने पर उन विचारों को सफल होते देखने के लिये आप सन्नद्ध रहिये, और कुछ नहीं। (कुछ सन्देह से दोनों राजकुमारों की तरफ देखकर)

सिन्धुनाग—(गंभीर मुद्रा से) प्रतिहिंसा की भीषण अग्नि में जलकर हमने कुछ भी न पाया। उधर शत्रु बेखटके सो रहा है और इधर सन्देह की नदी में, अविश्वास के आवर्त में हम दोनों डूबते उतराते हैं। (चेङ्गी से) महाराज प्राण की गति सुनाई नहीं

देती। हृदय के उच्छ्वासों में प्रतिहिंसा का उतार-चढ़ाव प्रत्यक्ष रूप से दिखाया नहीं जा सकता।

सोमेश्वर—किन्तु पिंजड़े को तोड़कर भाग निकलने वाले तोते पर भी तो पालनेवाले का विश्वास नहीं रहता राजकुमारो!

मणिद्वीप—यदि शिकार पर गये हुए व्याधा पर मृगों की बजाय भेड़िये टूट पड़ें तो उस समय व्याधा का कर्तव्य है कि फिर मृगया की इच्छा से वह उस जाल को छोड़कर भाग पड़े। मणि छिन जाने पर फिर बदला लेने की इच्छा से यदि अवसर की प्रतीक्षा में साँप घातक को उस समय छोड़ दे तो उसे कौन मूर्ख कहेगा महाराज?

चेङ्गी—महाराज सोमेश्वर, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि ये दोनों राजकुमार प्रतिहिंसा से ही हमारी सहायता के लिये आये हैं, इन पर अविश्वास नहीं किया जा सकता।

सोमेश्वर—परन्तु कूटनीतिज्ञ को किसी का विश्वास नहीं करना चाहिये, और ये चन्द्रकेतु आदि के बिना ही हमारे पास चले आये हैं इससे हमारा सन्देह करना भी अनुचित नहीं है राजन्!

सिन्धुनाग—उसका कारण तो भाई मणिद्वीप ने कह ही दिया है कि हम उस समय की प्रतिकूलता को देखकर वहाँ से चले आये। षड्यंत्रकारियों को प्रत्यक्ष युद्धनीति का आश्रय छोड़कर अवसर का ही अधिक भरोसा करना पड़ता है। रही चन्द्रकेतु की बात, कदाचित् वह भी बचकर आता ही होगा।

(दूत का प्रवेश)

दूत—महाराज की जय हो। चन्द्रकेतु दर्शनों की इच्छा से पधारे हैं।

सोमेश्वर और चेङ्गी—(एक ही साथ) भीतर आने दो।

सोमेश्वर—यदि चन्द्रकेतु भी आगया तब तो अवश्य इन दोनों ने भागकर बुद्धमानी की है, क्यों महाराज?

चेंगी—निःसंदेह।

(चन्द्रकेतु का प्रवेश)

चन्द्र०—महाराज की जय हो। उत्तुंग-उर्मिमाली उदधि के आवर्तों में युक्ति की नौका पकड़कर किसी तरह किनारे लगा हुआ यह चंद्रकेतु श्रीमान् को प्रणाम करता है।

सोमेश्वर—वाक्पाटव और युक्ति के चतुर सूत्रधार की तरह शत्रु सिंह की दंष्ट्राओं से बचकर जीवित लौटनेवाले चतुर चंद्रकेतु, सुनाओ शत्रु की संक्रांति किस ओर है?

चन्द्रकेतु—महाराज कुछ न पूछिये। नृसिंह के शत्रु को बहकाकर शिकार में फँसा लाने पर हम लोगों ने तो मैदान मार ही लिया था किन्तु अनायास ही शत्रु की सेना के आजाने पर हम लोग किंकर्तव्यविमूढ़ होगये। इधर विक्रमादित्य को सेना से उठाकर ले जाने पर उसका सेनापति हमारे ऊपर आ टूटा, और युद्ध-चातुर्य से उसने मुझे, चण्डांशुक तथा करहाट सेनापति को पकड़ लिया और राजदरबार में लेजाकर हमें प्रधानमन्त्री के सामने उपस्थित किया। उस दिन विक्रमादित्य के अस्वस्थ होने के कारण हमें बन्दीगृह में भेज दिया गया। दूसरे दिन दरबार में उपस्थित होने पर विक्रमादित्य ने मुझे पहचान लिया। किंतु मैंने उनके साथ अपनी सहानुभूति का प्रदर्शन करते हुए अपनी वीतरागता तथा "पुराने पापों का प्रायश्चित्त कर रहा हूँ" ऐसा बहाना बनाया। प्रसंगवश मैंने कहा कि मैं आपकी हित चिंता के

कारण ही शत्रु की गुप्त अभिसंधि आप (विक्रमादित्य) को बताने आया था कि पहले ही यह काण्ड हो गया। मैं इसी कारण वहाँ से भाग रहा था कि कहीं आप मुझे अपना शत्रु न समझ बैठें। अन्य लोग उस समय बंदीगृह से नहीं आ पाये थे। अब सीधा मैं आपके पास ही आ रहा हूँ।

सोमेश्वर—मैं तुम्हारे इस वाक्चातुर्य पर मुग्ध हूँ।

चंद्रकेतु—(दोनों राजकुमारों को प्रणाम करके) आप यहाँ कब आये ? क्या शत्रु की सहायता के पहले ही आप वहाँ से खिसक आये थे ?

मणिद्वीप—चंद्रकेतु, समय की अवहेलना होते देख जो हमारा कर्तव्य था उसी का हम दोनों ने पालन किया।

सोमेश्वर—अब हमारा कर्तव्य है कि शत्रु को अंतिम नींद सुलाने का आयोजन करें।

सब—ठीक है, परंतु जीवन निश्वास पवन के नष्ट कर देने का उपाय क्या है ?

(परस्पर मन्त्रणा करते हुए एक ओर जाते हैं)

[पटाक्षेप]

पञ्चम अंक

प्रथम दृश्य

दैवज्ञ—कलहरूप कलि के सन्निपात से जिस प्रकार द्वापर का अन्त हुआ, उसी प्रकार क्रान्ति-कालिक विक्रमरूप सूर्य पर सोमेश्वररूप चंद्र की दृष्टि-संयोग से उत्पन्न प्रवाह उल्कारूपी कूट-नीति की प्रज्वलित अग्नि से महापातक उत्पन्न करेगा। इस महापाप-ग्रह-योग से शत्रु-नाश होगा किन्तु विक्रम पर भी उसका प्रभाव होगा। ग्रह अच्छे नहीं हैं। भावुक हृदय महाराज विक्रमादित्य की रक्षा करनी होगी, परन्तु यह हो कैसे? पिछली वार युद्ध होने के समय किन्हीं दो मनुष्यों ने आकर मुझे उस समय सूचना दी, जब युद्ध प्रारम्भ होगया था। वे दोनों कौन थे? इसमें कोई सन्देह नहीं, वे दोनों हमारे पक्ष के होंगे। मेरे शक्ति भर उद्योग करने पर भी महाराज का षड्यंत्र से उद्धार नहीं हो सका। पर अभी शुक्रास्त के साथ विपत्ति के बादल मँडरा रहे हैं। शत्रु-नाश होना ही चाहिये। हे विधाता, क्या तुम्हें विक्रमादित्य की भलाई अभीष्ट नहीं है? अच्छा जो हो, उद्योग से पराङ्मुख होना विज्ञजनों का काम नहीं किन्तु ग्रहों की गति से (कुछ सोचकर) महाराजा विक्रमादित्य की विजय होगी (फिर कुछ हाथ पर गिनकर) विक्षिप्तता की प्रबलता होगी। हा विधाता, तुम क्या करना चाहते हो यह दैवज्ञ भी नहीं जान सकते। ग्रह-शान्ति के उपाय करना भवितव्यता के विधान में उपद्रव खड़ा करना है।

क्या होगा यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता। अब चलूँ पिछले ग्रहों से विक्रम की विजय हुई। इस वार के ग्रहों की गति उत्पात करना चाहती है। (सोचकर) चलूँ, देखूँ महाराज की क्या अवस्था है।

(जाता है)

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

(सायंकाल का समय महल के निकट उद्यान में महाराज विक्रमादित्य कुछ सोचते हुए टहल रहे हैं।)

विक्रमादित्य—करहाट की चिन्ता दूर हुई। चेङ्गी भाग गया। परन्तु सोमेश्वर भाई, तुमने भाई के नाते पर कुठाराघात करके दुष्ट चेङ्गी का साथ दिया। भाई का भाई से भयंकर युद्ध भ्रातृ-विद्रोह, क्या इस विद्रोह-वह्नि में मैं स्वयं नहीं जल रहा हूँ। मुझसे पूछा तक नहीं। चेङ्गी के साथ मिलकर करहाट और मेरे सर्वनाश का काण्ड उपस्थित किया। भाग्य ने मुझे बचा क्यों लिया ? वहीं शत्रुओं के षड्यंत्र में मैं पिस क्यों न गया ! भाई की इच्छा पूर्ण हो जाती। सुना है दो राजकुमारों ने मुझे बचा लिया ! वे कौन थे इसका भी पता न लगा। वे उपकारी बन्धु अब कहाँ गये ? मेरी मूर्छितावस्था में ही वे कहीं चले गये। बहुत खोज की। मैं उन्हें धन्यवाद भी न दे सका। हा, परोपकारी बन्धुओ, तुमने जिस सद्भाव से मेरी रक्षा की उसके लिये मेरा हृदय तुम्हारा कृतज्ञ है। चन्द्रकेतु, संन्यासी होगया, न जाने क्यों उसकी बातों से ऐसा ज्ञात हुआ कि वह मेरी हित-

चिन्ता के लिये ही षड्यंत्रकारियों के स्थान पर आया था। क्या वस्तुतः नीच भी सुधर सकते हैं। ऐसा न होने पर भी मैंने जो उसे क्षमा कर दिया, सो अच्छा ही हुआ। नृसिंह शत्रु-पक्ष का निकला, उसे भी क्षमा कर देना चाहता था, किन्तु साम्ब के बहुत आग्रह करने पर उसको बन्दीगृह में ही रखना पड़ा। संसार में क्षमा भी अमूल्य वस्तु है। शत्रुओं पर क्षमा उन्हें विवेक की ऊँची पहाड़ी पर चढ़ा देती है। क्षमा से शत्रु भी ठीक हो जाते हैं। क्षमा एक अमूल्य अवसर है जिसकी वह्नि में मनुष्य अपने पाप रूप कूड़े को भस्म करता है। पिता यदि पुत्र को क्षमा न करे, राजा यदि प्रजा को उनके अपराधों पर क्षमा न करे, तो अपराधी कभी-कभी विद्रोह पर उतारू हो जाता है। मैंने भी इन्हें क्षमा कर किया, इसमें मैंने क्या अपराध किया? प्रातःकाल का समीर शान्त भाव से स्थिर कलिका तथा पुष्पों को अपनी प्रकृति के अनुसार बार-बार अस्थिर कर देता है पर पुष्प और कलियाँ उन्हें क्षमा करके अपना मकरन्द उसे बाँट देती हैं। चंद्रमा अपनी चन्द्रिका जगत के सभी अच्छे और बुरे पदार्थों पर डालता है; उसकी निन्दा करने वाले भी उसके प्रकाश से जीवन लाभ करते हैं। वह उन्हें क्षमा ही तो कर देता है। नदियाँ मैला करने वाले और उनसे लाभ उठाने वाले दोनों को समानरूप से एक सा ही तो जल प्रदान करती हैं। संसार में क्षमा भी एक बड़ा गुण है। (एक तरफ़ से रोने चिल्लाने की अवाज़ आती है) हैं, यह क्या, यह कौन दुखी है? क्या करहाट में स्वाधीनता के सुख में अभी तक दुःख का अंश बाकी है?

(आगे बढ़कर उस ओर जाते हैं, फिर आवाज़ आती है)

"हाय, सर्वनाश, एक वार में ही सब को लील गया। स्त्री, पुत्र सब को एक ही बार में खा डाला। हा, महाराज, हे देव, क्या भाग्य में यही बदा था। हा प्रिय, हा प्राण-प्रिय पुत्र, मुझे भी वह सिंह क्यों न खागया! हे विधाता, क्या मेरे कुल का नाश यों ही होना था।" (महाराज विक्रमादित्य चटपट आगे आकर)

विक्रम—कौन है भाई, इस प्रकार क्यों विलाप कर रहे हो?

दुखी—(कुछ न सुनकर) हाय दैव! मेरी भी मृत्यु क्यों न होगई! मैं ही इस दुख देखने को बचा रहा। चुपके-चुपके आकर तूने मेरी झोपड़ी में आग लगा दी। मेरे बालक बच्चों और स्त्री को अमृत का घूँट समझ कर क्यों एक बार में पी गया। अब किसको दुख सुनाऊँ? संसार ऐसा असार है यह आज ही जान पड़ा! (आर्तनाद करके गिर पड़ता है)

(विक्रमादित्य निकट जाकर ध्यान से देखते हैं)

विक्रमादित्य—यह कोई दुखिया है। (हिलाकर) अरे कौन है जो इस समय इतना विलाप कर रहा है, भाई उठो तुम्हें क्या दुख है मुझसे कहो।

दुखिया—किससे कहूँ? यहाँ सुनने वाला ही कौन है? पुकार सुनाने आया था महाराज विक्रमादित्य को। उन्हीं को सुनाने से सन्तोष होगा।

विक्रमादित्य—बताओ तुम्हें क्या दुःख है (क्षोभ से) मैं ही विक्रमादित्य हूँ।

दुखिया—(कुछ चेतन्य सा होकर) यहाँ से पाँच कोस दूर उत्तर दिशा में कुन्तलपुर के बाहर मैं झोपड़ी बनाकर रहता हूँ महाराज! वहाँ एक घना वन है। मैं लकड़ी बेचने एक और गाँव

में गया था कि इसी बीच में एक सिंह आकर मेरे सोते हुए बच्चों को मार कर खा गया। मेरी स्त्री अधमरी अवस्था में पड़ी है। उस सिंह ने गाँव में त्राहि-त्राहि मचा दी है। गाँव वाले सब व्याकुल हैं। केवल यही समाचार सुनाने आया था महाराज ! रक्षा करो, रक्षा करो ! (कहता हुआ पैरों पर गिर पड़ता है)

विक्रमादित्य—(क्रोध से) इस वन में कई बार सिंहों के आक्रमण से गाँववालों का नाश हुआ है। अच्छा चलो, हम चल कर अभी सिंह को देखते हैं (अपने अंगरक्षक से) बाहुक, शीघ्र हमारा घोड़ा ले आओ। (स्वगत) इस व्यक्ति की आवाज़ तो कुछ पहचानी सी मालूम होती है। परन्तु इस समय परिचय प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं। दुखी का दुख दूर करना क्षत्रिय का प्रधान कर्तव्य है।

(बाहुक का प्रवेश)

बाहुक—महाराज घोड़ा तैयार है, आज्ञा हो तो कुछ आदमियों के साथ मैं भी चलूँ यह स्थान शत्रुओं से खाली नहीं है।

विक्रम—(गर्व से) नहीं, हम अकेले ही जाकर देखते हैं।

(प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

(पहाड़ की तराई में जाते हुए महाराज विक्रमादित्य और लकड़हारा)

विक्रमादित्य—अभी वह स्थान कितनी दूर है भाई ?

दुखिया—वह सामने ही तो है महाराज !

विक्रमादित्य—तुम्हारा नाम क्या है ?

दुखिया—मेरा नाम वितुण्ड है महाराज !

विक्रमादित्य—(अपनी धुन में तेजी के साथ बढ़ते हुए) मालूम होता है तुम्हारी आवाज़ मैंने कहीं सुनी है।

वितुण्ड—(घबराकर) महाराज चोलराज के यहाँ मैं सैनिक था। आपके विवाह के अवसर पर मैं आपके सामने कई बार आया गया हूँ कदाचित् इसी से श्रीमान् को कुछ आवाज़ में परिचिति सी मालूम होती हो।

विक्रमादित्य—हो सकता है (स्वगत) संसार में असंख्य मनुष्य हैं। ध्वनि की समता होना कोई आश्चर्य नहीं। (और तेजी के साथ बढ़ते हैं)

वितुण्ड—यही स्थान है महाराज, (एक गुफा की तरफ संकेत करके) महाराज यहाँ ही वह सिंह रहता है।

(इतने में एक तीर आकर विक्रमादित्य की पीठ में लगता है)

विक्रमादित्य—(घबरा कर) हैं यह क्या, षड्यंत्र षड्यंत्र !

(कुछ व्यक्ति एकदम प्रकट होकर)

एक व्यक्ति—नराधम, अब मर (कहता हुआ तीर तान कर विक्रम की छाती में मारता है)

विक्रमादित्य—आवाज़ पहचान कर, क्या महाराज सोमेश्वर तो नहीं है (परंतु किसी दूसरी तरफ से एक तीर आकर उस मारने वाले व्यक्ति के लगता है और दूसरा वितुण्ड के लगता है)

विक्रमादित्य—महाराज, मुझे अपना दुख नहीं हैं आपके ऊपर आघात का मुझे दुख है।

वितुण्ड—हाय, विश्वासघात (कहके गिर पड़ता है, तीर से

छटपटाते हुए पहले मारने वाले व्यक्ति की तरफ विक्रमादित्य बढ़ते हैं, पास जाकर सोमेश्वर को पहचान कर विलाप करते हैं)

विक्रमादित्य—परस्पर षड्यन्त्र ! ले तू भी मर (कहकर एक बाण उस मारने वाले की तरफ चलाते हैं वह व्यक्ति भी गिर पड़ता है)

वह व्यक्ति—हा महाराज ! हे जीवननाथ ! (कहता हुआ गिर पड़ता है इसी समय एक तीर आकर उस व्यक्ति के साथी के आकर लगता है)

दूसरा व्यक्ति—हाय महारानी ! (कहता हुआ गिर पड़ता है)

(सेनापति सुवेग का प्रवेश)

सेनापति—यही वह स्थान है। यहीं नराधमों ने महाराज को लाकर यह काण्ड उपस्थित किया है। (आगे बढ़ते हैं)

(महाराज विक्रमादित्य कुछ कराहते हुए सुवेग से)

विक्रमादित्य—सुवेग, देखो यह कैसा भीषण षड्यंत्र है। यह भाई सोमेश्वर इस तरफ़ पड़े हैं।

सुवेग—महाराज, पापी को पाप का फल मिला। अग्नि में पतंग भस्म होगया (पास जाकर) अरे, यह तो अन्तिम श्वास ले रहा है। (दूसरी तरफ कहराने की ध्वनि सुनाई देती है) यह क्या, यहाँ तो कोई और भी है। (सब को इकट्ठा करके) हा, यह तो महारानी हैं ! हा, महारानी क्या आपने ही राजकुमार का वेश धारण किया था ?

विक्रमादित्य—(पीड़ा से कराहते हुए) सुवेग, मैं स्वस्थ हो चला हूँ, ठीक पहचान कर बताओ ये सब कौन हैं ?

सुवेग—(चारों तरफ देखकर) कितनी अनर्थ-परम्परा। यह आपके चरणों में जीवन निछावर करने वाली सती महारानी

चंद्रलेखा हैं । यह उनकी सखी अनंगमुद्रा है। इस तरफ वही नराधम चन्द्रकेतु है ।

अनंगमुद्रा—(कुछ चैतन्य होकर और रानी की तरफ़ देखकर) हा महारानी, अपने महाराज के हित में प्राणों को न्यौछावर किया ।

विक्रमादित्य—क्या कहा, यह प्राणप्रिया चंद्रलेखा थीं ? हा, मेरे निश्वास की संगिनी, अंतर हृदय की शुभ्रप्रेरणा, तुमने इस जीवन में मुझे अपने विशद प्रेम का विशुद्ध पीयूष पिलाया, अंत में (लम्बा श्वास लेकर)...मेरे लिये यह जीवन उ...त्स...र्ग कर दिया । (हृदय की उत्तेजना से मूर्छित हो जाते हैं । फिर कुछ संज्ञा प्राप्त करके) हा-भाई-हा प्राण...प्रिये तुम धन्य...हो । (फिर मूर्छित हो जाते हैं)

(सेनापति आदि उपचार के लिये दौड़ते हैं)

सुवेग—देवी, यह सब क्या काण्ड है कुछ समझ में नहीं आता ।

अनंगमुद्रा—सुवेग, महारानी चंद्रलेखा ने सिंहल के राजकुमार का रूप धारण करके महाराज को शत्रु के षड्यंत्र से बचाने की चेष्टा की थी । मैंने इनके साथी राजकुमार का रूप धारण किया । हा भाग्य (कुछ कराहकर) हाय, बड़ी पीड़ा हो रही है ! चेङ्गी और सोमेश्वर ने चंद्रकेतु की सहायता से महाराज विक्रमादित्य को सिंह के बहाने यहाँ बुलाने का आयोजन किया था । हम दोनों उनकी कुटिलनीति से महाराज की रक्षा करने के हेतु चेङ्गी के प्रियपात्र राजकुमार बने । इधर चंद्रकेतु दुखी और लकड़हारे का वेश बनाकर महाराज को इधर ले आया । सोमेश्वर ने महाराज के आते ही उनको बाण मारा, इधर महारानी ने सोमेश्वर

को एक बाण मारा। महाराज ने भाई की हत्या पर क्रुद्ध होकर महारानी को मार दिया। मैंने चंद्रकेतु को बाण से भूशायी कर दिया। चेङ्गी ने यह देख मुझे बाण मारा, मैंने भी पहले ही साव धान होकर चेंगी को धराशायी कर दिया। वह भी कहीं इधर-उधर पड़ा होगा। हाय भाग्य का यह अंत होगा, यह किसे मालूम था।...हा महारानी (मृत्यु हो जाती है)

सुवेग—हाय, महाराज की यह दशा। करहाट की रक्षा करते हुए आपने कर्तव्य पालन के लिये कितना दुख उठाया ? क्या विधाता का यही विधान था ? सोमेश्वर आत्मप्रमाद ने तुम्हें कितना पतित बना दिया ! जीवनान्त ! जीवनान्त !

(दैवज्ञ का प्रवेश)

दैवज्ञ—विश्वास का अंत हुआ। स्वार्थ और परमार्थ के संग्राम में स्वार्थ भी पिस गया। परोपकार और परमार्थ कूटनीति के ताण्डव में उसको पैरों के नीचे पिस गया। भाग्य की धुरी रथचक्र के समान पत्थर रूपी कलिकाल की रगड़ से टूट गई। काल ने एकान्त नाश का भीषण शब्द किया। पृथ्वी और आकाश 'नाश नाश' कहकर गूँज उठे। इस गोलाकार पृथ्वी को मनुष्य दर्पणोदर के समान हस्तामलक करना चाहता है। पृथ्वी अपने विस्तृत गर्भ में अल्प बलवाले मनुष्य को लील रही है। (कुछ सोच कर) चलो, यह अच्छा ही हुआ महाराज की जो प्राणान्त पीड़ा से रक्षा हुई। गाता है—

हृदय के अन्तरतम में पैठ खेलती कौन अनूठे खेल।
विषमता गाती मोहक राग—नाश निर्झर में गरल उँडेल।

मृत्यु की दीप-शिखा उत्तुङ्ग खेलती अठखेली उद्दाम
विधाता करता हँस-हँस नृत्य न लेता है कुछ भी विश्राम।
हुआ है अमृत में भी क्षोभ, गरल में जीवन की है भ्रान्ति।
उभयतर पथ विचिकित्सारूप न निश्चय करता मन ध्रुव शान्ति।

(पट-परिवर्तन)

चौथा दृश्य

(करहाट प्रासाद के उद्यान में महाराज विक्रमादित्य एक आसन पर बैठे हैं, साथ में कुछ विश्वस्त कर्मचारी तथा महाराज जयसिंह है)

जयसिंह—महाराज, सोमेश्वर और काञ्ची-राज-रूपी-राहु के खग्रास से निकल आये यह कल्याण के लिये कल्याण का साधन बना, क्यों साम्ब जी !

साम्ब—विजययात्रा में संदेह के दुर्गम पर्वत पर चढ़ते हुए हमने जिन दो आत्माओं का बलिदान दिया वे क्या यों ही भुलाई जा सकती हैं महाराज !

जयसिंह—नहीं साम्ब, महारानी की मृत्यु, उनका पतिदेव की हितकाँक्षा में जीवनोत्सर्ग इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा, भारत की धमनियों में हृदयपिण्डरूप केन्द्र से प्रवाहित रक्त-संचार की तरह उस स्मृति का आवेश उठता ही रहेगा। नदी विलासरूप राज्यविलास में इन स्मृतियों की अस्फुट किन्तु अटूट धारा हृदय में तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम गति से स्पन्दित होगी।

साम्ब—करहाट के राज्यवंश-शरीर में रक्त की गति बंद

हो जाय, क्या यही विधाता को अभीष्ट था ? हा देव, (आँखों में आँसू भर आते हैं)

विक्रमादित्य—(गम्भीर मुद्रा से हृदय के आवेग को रोककर) हृदयेश्वरी का यह बलिदान किस प्रकार भूला जा सकता है ? मेरे हृदयरूप चन्द्र को रानी की जो सूर्यमयी सुषुम्ना किरण आलोकित करती थी आज वह अस्ताचल में सदा के लिए समा गई है। हा, जीवन इतना नश्वर है यह आज ही जाना। मेरे लिये, केवल मेरे लिये उसने सौकुमार्य छोड़ कठोरता से युद्ध किया, काल से लड़ी। हा ! वह शोभाधाम आनन्द-रञ्जन मुख क्या इस जीवन में फिर कभी देख सकूँगा ! नहीं, अब ऐसी आशा नहीं है। (व्यथित हो जाते हैं, फिर उद्वेग से) मेरे हृदय के उद्गारों से क्रीड़ा करने वाली, आनन्दाश्रु से अभिषिक्त कर सुख स्वर्ग को स्थायी सिंहासन पर बिठानेवाली चन्द्रलेखा क्या कभी भूली जा सकती है ? नहीं, (आकाश की ओर देखकर) हे विलास की सामग्री से प्रस्तुत सूर्य चन्द्र के मण्डल से मण्डित आकाश प्रदेश, मेरी हृदयेश्वरी की सुखद प्रतिमा से सौगुने अधिक हो चमको। पर याद रहे मुझे अपने आलोक में वही मूर्ति दिखाना। (अर्धविच्छिन्न अवस्था में हे मेरे स्वप्नों के सुख, आनन्द के उद्रेक, प्रातःकाल की उषा में मंद-मंद समीर में, और मध्याह्न के प्रचण्ड प्रकाश में मुझे उसकी मदमाती मूर्ति दिखाना भला ! हा जीवननिधे...हा हन्त ! (गिर पड़ते हैं, कर्मचारी गण उपचार के लिये दौड़ते हैं, महाराज फिर संज्ञा प्राप्त करके) हा, भाई सोमेश्वर, क्या तुम्हें यही मंजूर था ? मेरे हृदय को पीसकर अपने साथ क्यों ले गये ?

सुवेग—महाराज, शान्त हों। विश्वविजयी महाराज, धीरज

धारण करें। हे वीरता के अवतार, दार्शनिकों के आचार्य, श्रीमान् सब कुछ जानते हुए भी भगवान् राम के समान पतिप्राणा महारानी सीता के वियोग की सी दशा से क्या संसार के सामने लौकिक व्यवहार दिखा रहे हैं! अस्थिरता जीवन की विभूति है, यह उपदेश श्रीमान् ने कितनी बार हमें नहीं दिया है!

विक्रमादित्य—(स्वस्थ होकर) सुवेग, तुम्हारी बातों से मुझे शान्ति मिल रही है किन्तु मेरे हृदय में चन्द्रलेखा के उत्कृष्ट प्रेम और पारलौकिक ज्ञान का युद्ध हो रहा है। उसने मेरे लिये जीवन न्यौछावर किया, यह विचार मेरे हृदय को दग्ध कर रहा है। आज ज्ञान की जीत होती दिखाई नहीं देती। मैं प्रियतमा के ऋण से किस प्रकार उऋण होऊँगा यही मुझे चिन्ता है।

साम्ब—(बात बदलकर) महाराज, करहाट की प्रजा का प्रेम ग्रहण कर उसका पालन कीजिये। श्रीमान् और चन्द्रलेखा के नाम पर राज्य में सिक्के चलें जिनमें दोनों महानुभावों की मूर्तियाँ हों।

विक्रमादित्य—ठीक है, राज्यसिंहासन पर चन्द्रलेखा और उसके भाई की मूर्तियाँ हों क्यों मंत्रिन्?

साम्ब—महाराज, राज्यशासन तो श्रीमान् के ही हाथों में रहेगा।

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी—जय हो महाराज की, कल्याण के मंत्री जी आये हैं।

विक्रमादित्य—आने दो। (स्वगत सोमेश्वर की याद करके) हा, भाई सोमेश्वर, तुमने क्यों घोरतर कर्म करके हमें पातकी बनाया? हे देव, मैं तुम्हारी कितनी पूजा करता था। यह हृदय तुम्हारी आज्ञा पालन को कितना उत्सुक रहता था, यह तुम जानकर भी न जान पाये! मैंने तुम्हारे ही इन विचारों से कल्याण छोड़ा,

जिससे तुम्हारे हृदय को शान्ति हो। तुम्हें मुझे देखकर घृणा, जलन न पैदा हो। इसीलिये बाल्यकाल से पिता के शत्रुओं को जीतने के बहाने मैं निकल पड़ा। किन्तु तुम्हारे हृदय को शान्ति न हुई। तुम.....

(मंत्री का प्रवेश)

दूत—जय हो महाराज की !

विक्रमादित्य—सुनाओ मंत्रिन्, कल्याण के क्या समाचार हैं ?

मंत्री—देवाधिदेव, कल्याण के इतर मंत्रिमण्डल ने प्रजा से परामर्श करके श्रीमान् के चरण-दर्शनों की उत्कट इच्छा प्रकट की है। महाराज सोमेश्वर से प्रजा बहुत विरक्त थी। अब श्रीमान चलकर कल्याण को अपने चरणों से पवित्र करें।

विक्रमादित्य—मंत्री जी, हम कल्याण ज़रूर चलेंगे। हा मातृ-भूमि के दर्शनों की मुझे कितनी प्रबल इच्छा थी। अब वह पूर्ण होगी। (कुछ सोच कर) किन्तु महाराज सोमेश्वर और चन्द्रलेखा के वियोग में मातृभूमि का दर्शन हृदय को व्यथित कर रहा है। (करहाट के मंत्री से) मंत्री जी, कल सब प्रजावर्ग युक्त दरबार हो। हम करहाट राज्य के लिये आप को प्रतिनिधि शासक बनाया चाहते हैं। आपने राज्य के लिये कितना प्रयास किया है इसका प्रतिफल आपको मिलना ही चाहिये।

साम्ब—(हाथ जोड़कर) महाराज, मैं किस योग्य हूँ, राज्य की हितकामना से जो कुछ भी मुझसे हो सका, उसमें मैंने केवल कर्तव्य का पालन ही किया है। आपकी आज्ञानुसार कल दरबार का प्रबन्ध हो जायगा।

विक्रमादित्य—(जयसिंह से) प्यारे भाई जयसिंह, तुम अब

अपने राज्य को जाओ। तुमने आवश्यकता पड़ने पर जो मेरी रक्षा की इसके लिये तुम्हें हार्दिक धन्यवाद।

जयसिंह—देव, अपने चरणों में पले हुए इस सेवक को भूल न जाना। अनन्त-विश्रान्ति-गृह के सुख के समान आपके इन दर्शनों से मुझे कितना सुख मिलता है यह मैंने कितनी ही वार अनुभव किया है (आँखों में आँसू भरकर महाराज के चरणों पर गिर पड़ते हैं, महाराज उन्हें हृदय से लगा लेते हैं तथा भाई से विदा होकर महलों में जाते हैं सभा विसर्जित होती है।)

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

(करहाट का राजदरबार प्रजावर्ग से खचाखच भरा है, महाराज विक्रमादित्य पधारते हैं और नर्तकियाँ नाचती हुई गाती हैं)

जय जय जीवन नभ उजियारे, जय जय महाराज
जय विभूति भावों के प्यारे, जय जीवन सिरताज
निर्बल के बल
गुण गरिमा दल
धवल हिमाचल
प्यारे हितू हमारे
जय जय जीवन नभ उजियारे, जय विक्रम महाराज
जय विभूति भावों के प्यारे, जय जीवन अधिराज
चंचल राज्यश्री के अंचल
भू-रक्षक ध्रुव धीर सुनिर्मल

एकछत्र मणि नृप मणि मण्डल
काम-कला चख तारे
जय जय जीवन नभ उजियारे, जय विक्रम महाराज
जय विभूति भावों के प्यारे जय जीवन सिरताज

विक्रमादित्य--(नर्तकियों से) बस, बहुत हो चुका, रहने दो। (नर्तकियाँ बैठ जाती हैं, सभा में सन्नाटा छा जाता है। महाराज अपना भाषण प्रारम्भ करते हैं) प्रिय प्रजावर्ग, खेद है कि आज स्वर्गीय महाराज तथा उनके एक-मात्र हृदय, अन्तिम पुत्र करहाटराज के दिवंगत हो जाने पर सिंहासन का कार्य-भार चलाने के लिये हमें यहाँ एकत्र होना पड़ा है। प्रजा को प्राणों के समान प्यार करने वाले महाराज के दिवंगत होने पर अन्य लोगों को जो दुख हो रहा है, उसका मैं हृदय से अनुभव करता हूँ। एक मात्र उत्तराधिकारिणी महारानी चंद्रलेखा की स्वर्ग-यात्रा भी आप लोगों को ज्ञात है। ऐसी दशा में उचित यही है कि राज्य के सिक्कों पर एक तरफ़ अन्तिम महाराज की और दूसरी तरफ़ रानी चंद्रलेखा की मूर्ति बना दी जाय। राज्य-सिंहासन पर उन दोनों व्यक्तियों के तैलचित्र रखे जायँ तथा राज्य का काम सुचारु रूप से चलाने के लिये महात्मा साम्ब जी राज्य का कार्य सँभाले। तमाम राजकाज के लिये विभिन्न परिषदें नियुक्त कर दी जायँ। आवश्यकता पड़ने पर कल्याण राज्य आपकी सहायता करेगा। क्यों, सब लोगों को स्वीकार है न ? (एक स्वर से 'ठीक है' की ध्वनि उठती है) अब मैं आप लोगों से विदा होता हूँ।

साम्ब—महाराज, श्रीमान् की आज्ञा शिरोधार्य है पर क्या

पुद

पृ

ड

च